मेरे क्रन्तिकारी साथी

अमर शहीद सरदार भगत सिंह



संकलन: वीरेंद्र सिंधु

मेरे क्रान्तिकारी साथी

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मेरे क्रान्तिकारी साथी

लेखक :

अमर शहीद

सरदार भगतसिंह

संकलन :

वीरेन्द्र सिन्धु

मूल्य : बारह रुपये (12.00)

प्रथम संस्करण 1977,
MERE KRANTIKARI SATHI (Life-sketches)
by Amar Shaheed Sardar Bhagat Singh

'चाद' के 'फासी अंक' (नवम्बर, 1928) में "विप्लव-यज्ञ की आहुतियां" शीर्षक से क्रान्तिकारियों के परिचय-लेख छपे थे। इन लेखों पर भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं। 'आतंकवाद का इतिहास' के लेखक स्वर्गीय श्री चन्द्रशेखर शास्त्री ने लिखा है कि ये जीवन-परिचय उन्हें श्री हरिनारायण कपूर से मिले थे। बाद में मालूम हुआ कि यह श्री शिव वर्मा का छद्म नाम था। शास्त्री जी ने ये लेख फांसी अंक के सम्पादक आचार्य चतुरसेन जी को दिए।

शहीद भगतसिंह के छोटे भाई और उनके गुप्तदूत सरदार कुलबीरसिंह जी का कहना है कि ये सब सरदार भगतसिंह जी के लिखे हुए हैं। इस सम्बन्ध में श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने एक बार आचार्य चतुरसेन जी से पूछा तो उन्होंने कहा था कि हा ये भगतसिंह के ही लिखे हुए है, लेकिन कुछ स्वयं उन्होंने हिन्दी में लिखे थे और कुछ का गुरुमुखी से अनुवाद कराया गया था।

अभी हाल मे ही भगतसिंह जी के अत्यत प्रिय साथी आदरणीय श्री शिव वर्मा जी ने अपनी पुस्तक 'संस्मृतियां' में भगतसिंह के सम्बन्ध मे लिखा है—"और कलम का धनी तो वह था ही। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी पर उसका समान अधिकार था। उन दिनों कामरेड सोहनसिंह जोश अमृतसर मे 'किर्ती' नाम से गुरुमुखी तथा उर्दू मे एक मासिक पत्रिका निकालते थे। भगतसिंह उसमें नियमित रूप से लिखता था। विभिन्न नामों से 'किर्ती' में क्रान्तिकारी शहीदों की जो जीवनिया प्रकाशित हुई थी, उनमे से अधिकांश भगतसिंह की ही कलम की देन थी। हिन्दी मे उसने अधिकतर 'प्रताप' तथा 'प्रभा' (कानपुर), 'महारथी' (दिल्ली) और 'चाद' (इलाहाबाद) में ही लिखा।"

—वीरेन्द्र सिन्धु

क्रम

मेरे क्रान्तिकारी साथी

अमर शहीद सरदार भगतसिंह की कलम से

देखते-देखते पंजाब-केसरी रणजीतसिंह अपने प्यारे पंजाब को छोड़कर महा-यात्रा कर गए। उनके आंख मूंदते ही अंग्रेजों की बन आई। दस ही वर्ष के भीतर पंजाब का नक्शा भी लाल रंग में रंग दिया गया। अलीपुर और मुबराओ तथा गुजरात और चेलियांवाला में वीर सिक्ख सैनिकों ने जिस वीरता का परिचय दिया था, उसकी याद आज भी रोमांचित किये बिना नहीं रहती। परन्तु देश का दुर्भाग्य! नेताओं ने सदा धोखा दिया और आखिर पंजाब भी पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ दिया गया।

×

1857 के दिन आए। समस्त भारत को संगठित किया गया। पंजाब की ओर किसीने विशेष ध्यान नहीं दिया। अभी कल तो अपनी स्वतंत्रता कायम रखने के लिए वीर योद्धाओं ने बढ़-चढ़कर आत्मबलिदान किये थे, अभी कल ही तो उन्होंने वह बहादुरी दिखाई थी, जिसे देखकर शत्रु भी दंग रह गये थे; अपने प्यारे महाराजा की प्रेयसी की दुर्दशा और छोटे महाराजा दिलीपसिंह के साथ घोर अन्याय देखकर वे तड़प उठे थे, कौन आशा कर सकता था कि उसी पंजाब में दस वर्ष के भीतर ही इतना परिवर्तन हो जाएगा कि वह स्वतंत्रता के संग्राम में विभीषण का काम करेगा! परन्तु वही हुआ, जो नहीं सोचा था। पंजाबी वीरों (!) ने अपने ही भाइयों के उस विराट आन्दोलन को बुरी तरह तहस-नहस कर डाला और सदा सर्वदा के लिए पंजाब के उज्ज्वल ललाट पर कलंक-कालिमा पोत दी।

परन्तु उस कालिमा को धोने के लिए पंजाब ने अपना रक्त भी खूब भेंट किया। अनेक वीरों ने रणांगण में, फांसी के तख्ते पर, या जेल में तिल-तिल कर आत्मबलि दे दी, और आज तक वह बलि-शृंखला चल रही है।

पंजाब में सबसे पहले जो बलिदान हुए, वे 'कूका-विद्रोह' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कूका आन्दोलन के नेता श्री गुरु रामसिंह का जन्म सन् 1824 ई० में भैणी नगर, जिला लुधियाना में हुआ था। वे युवावस्था में महाराजा रणजीतसिंह की सेना में नौकरी करने के लिए भरती हो गए थे। परन्तु अधिकतर ईश्वरोपासना में लीन रहने के कारण वे अपना कार्य भी ठीक न कर पाते थे। इसीसे त्यागपत्र देकर वे वहां से चले आए और गांव में ही शान्तिपूर्वक भगवद्भजन करने लगे। भक्ति-भाव के कारण आपका नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया और लोग दूर-दूर से दर्शनों के लिए आने लगे। आपने समाज की बुराइयों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया। परन्तु

फिर शीघ्र ही यह अनुभव हुआ कि वास्तविक उन्नति राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त किए बिना नही हो सकती। इसलिए उनके धार्मिक उपदेशों में राजनैतिक बातों का भी प्रचार होने लगा। कहते हैं कि श्री रामदास नामी एक साधु ने उनकी प्रसिद्धि की बात सुनी तो उनके पास जाकर कहा—"साहब! यह समय इस तरह वैयक्तिक आनन्द उडाने का नहीं। छोड़िए भक्तिमार्ग को और देश में कर्म-शीलता का संचार कर, उसे स्वतंत्र कीजिए।" इन्ही श्री रामदास का ज़िक्र सरकारी रेकार्ड्स मे है। परन्तु फिर एकाएक वे किधर गायब हो गए, यह नहीं जाना जा सका। सरकारी कागज़ों मे भी कुछ निश्चित रिपोर्ट नही है। लोगों का कहना है कि उन्होने रूस की ओर प्रस्थान कर दिया था। जो हो, गुरु रामसिंह राजनैतिक क्षेत्र में कटिबद्ध होकर उतर आए। उनका धार्मिक सम्प्रदाय अलग बन गया था, जिसके कि वे गुरु समझे जाते थे। वह नामधारी कहलाता था।

उस समय उन्होंने देश मे असहयोग का प्रचार किया। शिक्षा, अदालत आदि सभी चीज़ो के बहिष्कार के साथ ही साथ रेल, तार और डाक का भी बहिष्कार कर दिया और डाक का अपना निजी प्रबन्ध कर लिया। यह सब देखकर सरकार बौखला उठी और उनपर विशेष बन्दिशें लगा दी गईं।

परन्तु गुरु रामसिंह ने कार्यक्षेत्र को और भी विस्तृत कर दिया। अधिकतर गुप्त रूप से ही कार्य होने लगा। पंजाब प्रान्त को 22 जिलों में विभाजित कर 22 अध्यक्ष नियुक्त कर दिए गए, जो कि अपने संगठन को बढ़ाते और दीक्षा देते जाते थे। कुछ दिनो में ही यह राजनैतिक तथा धार्मिक सम्प्रदाय ज़ोर पकड़ गया। परन्तु बाह्य आडम्बर कम हो जाने के कारण सरकार का सन्देह दूर हो गया और सब बन्दिशें हटा दी गईं। यह बात सन् 1869 की है। बन्दिशें हटाते ही उत्साह बढ़ा। लोग उन्मत्त हो उठे। उनके लक्ष्य में और आदर्श मे गोरक्षा का भाव बहुत ज़ोरो से मौजूद था।

1871 में कुछ कूके वीर अमृतसर से जा रहे थे। बूचड़ों से मुठभेड़ हो गई। सबको कत्ल करके वे सीधे भैणी की ओर चल दिए। इधर अमृतसर में सभी प्रतिष्ठित हिन्दू पकड़ लिए गए। गुरु रामसिंह को समाचार मिला। तुरन्त उन लोगों को कोर्ट में जाकर अपना अपराध स्वीकार करने और आत्मसमर्पण करने को लौटा दिया गया। लोगों पर इस बात का बहुत प्रभाव पड़ा। सरकार व्यक्ति-विशेष का यह प्रभाव बढ़ता देख न सकी।

सन् 1872 में 13 जनवरी को भैणी मे माघी का मेला होने वाला था। सहस्रों कूके उधर जा रहे थे। रास्ते में जाते हुए एक कूके का एक मुसलमान से मुस्लिम रियासत मालेर कोटला में झगड़ा हो गया। मुसलमानों ने उसे पकड़कर बहुत पीटा और गाय उसके पास गिराकर हलाल कर दी गई। वह क्रुद्ध और मायूस होकर वहा से गया और भरे दीवान में अपनी दुःख-गाथा कह सुनाई। लोगों में

उत्तेजना बढ़ी। सभी ने गुरु रामसिंह से आग्रह किया कि जिस विप्लव की आयोजना इतने दिनों से की जा रही थी, वह आज ही आरंभ कर देना चाहिए। परन्तु पर्याप्त तैयारी न दीखने से गुरु जी उनसे सहमत न हुए। उन्होंने गले में पगड़ी डालकर उन लोगों से शान्त रहने की प्रार्थना की। बहुत-से लोग उनकी अनुनय-विनय सुन शान्त हो गए, परन्तु 150 व्यक्ति प्रतिहिंसा की आग से जल उठे। वे शान्त न हो सके, उन्होंने विद्रोह खड़ा करने की घोषणा कर दी। तब गुरुजी ने एक उपाय सोचा। उन्होंने पुलिस को कहला भेजा कि इन उत्तेजित लोगों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, अतः इनकी किसी कार्रवाई का उत्तरदायित्व मुझ पर न रहेगा। उन्होंने सोचा था कि इससे शेष संगठन बच जायेगा तो फिर शीघ्र ही पूरी तैयारी से विप्लव मचा दिया जायेगा।

इधर इन लोगों ने मलौध नामक एक किले पर आक्रमण कर एक तोप, कुछ तलवारें और घोड़े निकाल लिए। कहा जाता है कि इस किले के सरदारों ने विप्लव में साथ देने का वचन दे रखा था। उसी भरोसे पर इन लोगों ने उनसे साथ देने का आग्रह किया। परन्तु वे सरदार अपरिपक्व विद्रोह उठता देख साथ देने का साहस ही न कर पाये। अब इन लोगों ने शस्त्र हासिल करने के ख्याल से उन्हींके किले पर आक्रमण कर दिया। अगले दिन प्रातःकाल मालेर कोटला शहर पर आक्रमण कर दिया और महल तक में जा घुसे, हालांकि वहां लोग पहले से ही सतर्क किये जा चुके थे और असंख्य सैनिक पहरे पर नियुक्त थे। लड़ाई हुई। ये लोग बड़ी वीरता से लड़े और अन्त में पटियाला रियासत के सीमान्त-स्थित रढ़ नामक गांव के निकटवर्ती जंगल में लड़ते हुए 68 व्यक्ति पकड़े गए। उनमें से 50 को तो अगले दिन लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर मि० कॉवन ने मालेर कोटला में तोप से उड़ा दिया। बारी-बारी से सहर्ष जयनाद करते हुए वे लोग तोप से बंध जाते और एक ही धमाके के शब्द के बाद न जाने वे किधर विलुप्त हो जाते। इस तरह 49 को तो उड़ा दिया गया, परन्तु पचासवां एक तेरह वर्षीय बालक था। उस पर दयालु होकर मिसेज कॉवन ने अपने पति से उसे क्षमा करने को कहा। मि० कॉवन ने झुककर गुरु रामसिंह को गाली बकते-झकते उससे कहा कि तुम कह दो कि तुम उसके अनुयायी नहीं हो तो छोड़ दिए जाओगे, परन्तु अपने गुरु के प्रति यह घृणित और कुत्सित शब्द बकते सुन उस बालक को ऐसा क्रोध आया कि तड़पकर पहरे वालों के हाथों से निकल गया और मि० कॉवन की दाढ़ी से पकड़ लिया, और न छोड़ा तब तक, जब तक कि उसके दोनों हाथ नहीं काट दिये गये और उसे भी वहीं ढेर न कर दिया गया।

शेष सोलह व्यक्ति अगले दिन मलौध में फांसी पर लटका दिए गए। जिस आनन्द और हर्ष से वे लोग अपना प्राणोत्सर्ग कर रहे थे, वह देखते ही बनता था। उन लोगों ने, उन निष्फल विद्रोही सैनिकों ने, अपने आदर्श के लिए अपने प्राण दे

दिए और निज रक्त से पंजाब के ललाट को गौरवमय बना दिया।

उधर गुरु रामसिह् जी 1818 रेज़्लेशन के अनुसार गिरफ्तार कर लिए गए और बर्मा मे निर्वासित करके भेज दिए गए। वहीं पर 1885 में जेल में ही आपका देहावसान हो गया।

आज लोग इन हुतात्माओं को भूल चुके हैं, उन्हें मूर्ख और उतावले, पथभ्रष्ट तथा आदर्शवादी बतलाते हैं, परन्तु कहां है आज वह उत्साह? कहा है वह निर्भीकता और तत्परता? आज कितने हैं, जो उसी प्रकार हंसते हुए फांसी के तख्ते पर प्राण दे सकेंगे?

—निर्भय

चाफेकर वन्धु

सन् 1897 का साल था, अभी अन्य पाश्चात्य वस्तुओं की भांति भारत के गांव-गांव में प्लेग का प्रचार न हुआ था। अस्तु। पूना में प्लेग फैलने पर सरकार की ओर से जब लोगों को घर छोड़कर बाहर चले जाने की आज्ञा हुई तो उनमें बड़ी अशान्ति पैदा हो गई। उधर शिवाजी जयन्ती तथा गणेश पूजा आदि उत्सवों के कारण सरकार की वहां के हिन्दुओं पर अच्छी निगाह थी। वे दिन आजकल के समान नहीं थे। उस समय तो स्वराज्य तथा सुधार का नाम लेना भी अपराध समझा जाता था। लोगों के मकान न खाली करने पर सरकार को उन्हें दबाने का अच्छा अवसर हाथ आ गया। प्लेग कमिश्नर मि० रेण्ड की ओट लेकर कार्यकर्ताओं द्वारा खूब अत्याचार होने लगे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई और सारे महाराष्ट्र में असंतोष के बादल छा गये।

गवर्नमेंट हाउस पूना में विक्टोरिया का 60वा राजदरबार बड़े समारोह के साथ मनाया गया। जिस समय मि० रेण्ड अपने एक और मित्र के साथ उत्सव से वापस आ रहे थे, तो एकाएक पिस्तौल की आवाज हुई और देखते-देखते रेण्ड महाशय ज़मीन पर आ गिरे। उनके मित्र अभी बच निकलने का मार्ग ही तलाश कर रहे थे कि एक और गोली ने उनका भी काम तमाम कर दिया। चारों ओर हल्ला मच गया और दामोदर चाफेकर उसी स्थान पर गिरफ्तार कर लिए गए। यह घटना 22 जून, 1897 की है।

अदालत में आपपर अपने छोटे भाई बालकृष्ण चाफेकर तथा एक और साथी के साथ अभियोग चलाया गया। पकड़े जाने पर तीसरा साथी सरकारी गवाह बन गया और सारा भेद खुल गया।

किसी-किसी उपवन में प्रायः सभी फूल एक-दूसरे से बढकर ही निकलते हैं। दो फूल तो देवता के चरणों तक पहुंच चुके थे, अब तीसरे की बारी आई। चाफेकर भाइयों में सबसे छोटे ने आकर मां के चरणों में प्रणाम किया और कहा—"मां! दो फूल तो रामाँ के काम आ गए, अब मैं भी उन्हीके चरणों तक पहुंचने की आज्ञा लेने आया हूं।" उस समय माता के मुख से एक शब्द भी न निकला। उसने बालक के मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसका मुख चूम लिया।

एक दिन जब अदालत में चाफेकर बन्धुओं की पेशी हो रही थी, तो उनके तीसरे भाई ने वहीं पर उस सरकारी गवाह को मार दिया। उस समय किसीको

इस बात का ध्यान तक न था कि वह छोटा-सा लड़का प्रतिहिंसा की आग से इतना पागल हो उठेगा।

अन्त मे उन तीनों भाईयों को एक और साथी के साथ फांसी दे दी गई।

—सैनिक

श्री कन्हाईलाल दत्त

तुझे उनसे ख्वाहिशे दुश्मनी, तेरी आरज़ू भी अजीब है।
वो हैं तख्त पे तू है ख़ाक पे, वो अमीर है तू ग़रीब है।।

+

कन्हाई सचमुच ही विप्लव युग का कन्हाई था। 1887 की कृष्णाष्टमी की काली अंधियारी रात में उसने पहल-पहल इस दुनिया की रोशनी देखी थी। उस दैवी ज्योति के आलोक से एक बार फिर भारत के प्राण जगमगा उठे। विपक्षियों के हृदय दहल गए और इतिहास के पृष्ठ खून से तर-बतर हो गए। वह ऐसा प्रकाश था, जिसकी आभा आज तक कम न हुई, प्रत्युत दिनों-दिन बढती ही चली गई। आज कन्हाई का पार्थिव शरीर हमारे बीच में नहीं है, फिर भी उसका मूर्तिमान आदर्श बरबस हमारे हृदयों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। 'टु सी हिम वाज़ टु लव हिम' की बात अक्षरश: उसके बारे में सत्य थी। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' अस्तु। बचपन से ही उनके ढंग औरों से निराले थे। पढ़ने-लिखने में वे प्राय: सबसे प्रथम ही रहा करते थे और स्कूल के सभी लड़के उनसे विशेष स्नेह रखते थे। दीन-दुखियो से तो उन्हें कुछ विशेष सहानुभूति थी और एक धनी-मानी के घर जन्म लेकर भी वे प्राय. निर्धन विद्यार्थियों के साथ ही रहा करते थे। आज किसीके लिए किताबें खरीदी जा रही हैं, तो कल एक और के लिए कपड़ों का प्रबन्ध हो रहा है, और परसों किसी तीसरे के लिए भोजन की व्यवस्था की जा रही है। सारांश यह कि कन्हाई बड़ा उदारचरित तथा दयावान था और देशसेवा के भाव उस कोमल हृदय मे बचपन से ही अंकुरित हो उठे थे।

बम्बई और बंगाल में शिक्षा पाकर ग्रेजुएट होने के बाद कन्हाई यह कहकर कि नौकरी की तलाश में कलकत्ते जाता हूं, घर से निकल पड़े। विदा होते समय उनकी माता ने स्वप्न में भी यह न सोचा था कि उनका प्यारा कन्हैया किसी और ही उद्देश्य को लेकर कलकत्ता जा रहा है।

स्वदेशी आन्दोलन समाप्त हो चुका था और क्रान्ति का धुआं छिपे-छिपे बंगाल में जोरों के साथ फैल रहा था। आघात पर आघात लगने से बंगाल में एक मर्मवेधी आर्तनाद घहरा उठा। घर-बार पर लात मारकर बंगाली युवकों ने प्राणों की बाज़ी लगानी शुरू की। अंकुर तो उग ही चुका था, अब परिस्थिति अनुकूल पाकर उसने विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लिया। माता की ममता, पिता का प्रेम, धन-वैभव का लोभ अथवा मृत्यु का भय अब कन्हाईलाल को अपने कर्तव्य से अलग न कर सका। उसने अन्त समय तक पर्वत की भांति अचल

तथा समुद्र की भांति गम्भीर रहकर अपने कर्तव्य का पालन किया। उस समय विप्लव-कार्य को देशव्यापी बनाने के लिए कन्हाईलाल ने जिस संलग्नता के साथ प्राणपण से अथक परिश्रम किया था, वह विरले ही लोगों में दिखाई देता है।

चन्द्रनगर में विप्लव का केन्द्र स्थापित कर, सन् 1907 मे कन्हाईलाल कलकत्ता आ गया। कुछ दिन मानिकतल्ला बाग में श्री उपेन्द्र आदि के पास रहकर उसे चटगाव के एक कारखाने मे प्रचार के लिए जाना पडा, किन्तु एक अमीर का लड़का आखिर कुली बनकर कब तक छिपा रह सकता था। अस्तु कुछ ही दिनों बाद उसे फिर वापस आना पड़ा। इस बार मानिकतल्ला न जाकर, उसने एक बम की फैक्टरी में अपना अड्डा जमाया। उसे केवल धर्म-चर्चा अच्छी न लगती थी, वह तो काम चाहता था।

मई, सन् 1908 के आरम्भ मे उक्त बाग की तलाशी ली गई और गिरफ्तारियां शुरू हो गई। कन्हाईलाल को भी पकडकर अलीपुर जेल में लाया गया। जेल में एक ही प्रकृति वाले कितने ही नवयुवको का काफी जमाव हो गया। काम तो कुछ था नहीं, अतएव कहीं धर्म की चर्चा होने लगी तो कहीं दो-चार ने राजनीति पर बहस शुरू कर दी। नित्य ही विवाद हुआ करता था, किन्तु कन्हाई ने कभी भी उसमें भाग न लिया। सबको तंग करना तथा सोना, यही उसके दो मुख्य काम थे। जिस समय नरेन्द्र गोसाईं के बारे में बात छिड़ती तो कोई कहता कि उसे मृत्युदण्ड हो और कोई किसी अन्य प्रकार के दण्ड का विधान तैयार करता, किन्तु उस समय भी कन्हाई ने कभी एक बात भी न कही।

एक दिन अचानक कन्हाई के पेट में बड़े जोरों का दर्द होने लगा और उसे अस्पताल भेज दिया गया। सत्येन्द्रकुमार खांसी आने के कारण पहले से ही वहां पर थे। उन्होंने नरेन्द्र से अपने सरकारी गवाह बनने की इच्छा प्रकट की। उनपर विश्वास करएक दिन नरेन्द्र एक अंग्रेज की संरक्षता मे उनसे कुछ सलाह करने आया। अच्छाअवसर हाथ आया देख सत्येन्द्र ने उसपर फायर कर दिया। गोली पैर मे लगी, किन्तु नरेन्द्र गिरा नहीं। उसे भागते देख कन्हाई आगे बढा, पर उस अंग्रेज ने उसे पकड़ लिया। कन्हाईलाल ने उसपर भी गोली चलाई और वे महाशय हाथ घायल हो जाने के कारण अलग खड़े होकर चिल्लाने लगे। नरेन्द्र को हस्पताल के बाहर होते देख, कन्हाई ने उसका पीछा किया। फाटक पर पहरेदार ने रिवाल्वर देखकर स्वयं ही दरवाजा खोल दिया और उंगली के इशारे से यह भी बता दिया कि नरेन्द्र उस ओर गया है। इस बार नरेन्द्र को देखते ही उसकी पिस्तौल दनादन गोलियां उगलने लगी। उस समय किसीको भी उसकी उग्र मूर्ति का सामना करने का साहस न हुआ। जेल के और कर्मचारी तो इधर-उधर छिप गये, किन्तु जेलर साहब मुसीबत में आ गए। बेचारा अपने मोटे-ताजे शरीर के आधे भाग को एक लकड़ी की तिपाई के नीचे छिपाकर पड़ा रहा। नरेन्द्र के गिर जाने पर जब उसकी पिस्तौल

खाली हो गई तो उसे गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग चलने पर इन दोनों को ही फांसी की सजा हुई। 10 नवम्बर, सन् 1908 तक, जिस दिन उन्हें फांसी दी गई थी, उनका वजन 16 पाउण्ड बढ गया था।

कन्हाई की फांसी के दिन का वर्णन श्री मोतीलाल राय ने बड़े ही करुणाजनक शब्दों में किया है, अतएव उसे उन्हीके शब्दों में पाठकों के सामने प्रस्तुत किये देता हूं—

"कन्हाईलाल का शव लेने के लिए हम लोग धीरे-धीरे एक अंग्रेज के पीछे चल दिए। उस समय शोक और दुख से सारा शरीर कांप रहा था। धीरे-धीरे लोहे के फाटक को पारकर हम लोगों ने भीतर प्रवेश किया। सहसा उस व्यक्ति ने उंगली से एक कमरा दिखाया। उसी छोटे कमरे में सिर से पैर तक काले कम्बल से ढका हुआ कन्हाई का मृत शरीर पड़ा था। हम लोगों ने उसे आगन मे लाकर रखा। किसीको भी ऊपर का कम्बल उतारने का साहस न हुआ। आशु बाबू की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई। एक-एक कर सभी रोने लगे। उस समय उस गोरे ने कहा—'रोते क्यों हो? जिस देश में ऐसे वीर युवक जन्म लेते हैं, वह देश धन्य है, जन्म लेकर मरना ही होगा, इस प्रकार की मृत्यु मनुष्य कब पाते हैं?' हम लोग विस्मित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगे। साहब ने शव बाहर ले जाने को कहा। हमने डरते-डरते कम्बल उतारा। ओह! उस दिव्य स्वरूप का परिचय कराना हमारी शक्ति से परे है। लम्बे-लम्बे बालों ने प्रशस्त ललाट को ढंक लिया था। अधखुली आंखों से उस समय भी अमृत ढुलक रहा था। दृढ़-बद्ध ओष्ठ-पुटों मे संकल्प की जाग्रत-रेखा फूटी पडती थी, फूलों आदि से सजाए जाने पर ऐसा जान पड़ता था, मानो वह एक मधुर हंसी हंस रहा हो।

"एक छोटी वक्तृता के बाद चिता में आग दे दी गई, और कुछ घण्टों के बाद वहां राख के एक ढेर के सिवा और कुछ न रहा। उस समय चिता की एक मुट्ठी भस्म पाने के लिए लोगों में एक प्रकार की छीना-झपटी-सी मच गई। मैं भी अस्थि का एक टुकड़ा चांदी की डिब्बी में रखकर घर वापस आया।

"आधी रात का समय था। ऐसा जान पड़ा कि घर एक प्रकार की दुर्गन्धि से भरा है। मैं भयभीत होकर उठ बैठा। उस समय कन्हाई की विधवा माता का करुण क्रंदन हृदय को विदीर्ण करने लगा। मैं घुटने टेककर बैठ गया और उस वीर प्रसविनी विधवा की चरणरज मस्तक मे लगा ली, और करुण स्वर से कहा—'वन्दे मातरम्'।"

इसी सम्बन्ध मे उपेन्द्र बाबू ने लिखा है—

"अब उसी पुरानी कहानी का वर्णन करने की इच्छा नहीं होती। आज वे सब बातें मन से अलग हो चुकी हैं। हां, केवल कन्हाईलाल के मुख की झलक रह गई है। आज जब चारों ओर से यही सुनाई पड़ता है कि अहिंसा ही परम धर्म है, उस

समय चुप होकर सुन लेता हूं। परन्तु साथ ही साथ कन्हाईलाल की परम शान्त मुखछवि का स्मरण हो आता है। वे आंखें क्या हत्यारी आंखें थीं ? क्या वे अशान्ति या अधार्मिकता की आंखें थी ? अन्तरात्मा कभी साक्षी नही देती। हृदय से केवल यही ध्वनि निकलती है कि धर्म का तत्त्व हिंसा और अहिंसा दोनों के परे है। कन्हाई लाल मरकर भी मरा नही है।"

—वंशी

श्री सत्येन्द्रकुमार वसु

मुजफ्फरपुर हत्याकाण्ड 30 अप्रैल, सन् 1908 ई० को हुआ था। इसके होते ही सारे बंगाल में तलाशियों और गिरफ्तारियों की धूम मच गई। कलकत्ते के प्रायः सभी अड्डों की तलाशियां हुईं और 2 मई, 1908 को बहुत-से कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिए गए। इन लोगों को अलीपुर जेल में रखा गया, और सबपर मुकदमा चलाया गया। गिरफ्तारी से इन लोगों में कोई उदास तक नही हुआ, क्योंकि इस दिन की प्रतीक्षा बहुत पहले से थी। खूब चहल-पहल और धूम-धाम से इन लोगों के दिन बीत रहे थे कि एकाएक एक दिन मालूम हुआ कि श्रीरामपुर का नरेन्द्र गोसाईं सरकारी गवाह बनने जा रहा है। वह समिति का सारा भेद खोल देगा और इससे आशातीत हानि होगी। अतएव विश्वासघातक को दण्ड देना और समिति की रक्षा करने का कठिन कार्य सारे कार्यकर्ताओं के सामने उपस्थित हो गया। विश्वासघातक को दण्ड देकर समिति की रक्षा कौन करे, यही समस्या सबके सामने थी।

जिन दिनों की यह बात है, उन्ही दिनों मेदिनीपुर से श्रीयुत सत्येन्द्रकुमार वसु, जिन्हे बिना लाइसेन्स अपने बड़े भाई की बन्दूक इस्तेमाल करने के अपराध में 2 साल का कठिन कारावास हुआ था, अलीपुर जेल मे लाए गए, क्योंकि कलकत्ते के गिरफ्तार हुए लोगों से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध पाया गया और इनके ऊपर भी एक और नया मुकदमा चलाया गया।

स्वदेशी युग में मेदिनीपुर की समिति की बहुत ख्याति हुई थी। इसने बड़े-बड़े कार्य किए थे। सत्येन्द्र बाबू ही इसके प्रधान संयोजक समझे जाते थे। जब ये मेदिनीपुर से अलीपुर जेल लाए गए, तब इन्हे नरेन्द्र गोसाईं के विश्वासघात की बात बतलाई गई। समिति के नियमानुसार इन्होने भी विश्वासघातक को प्राणदण्ड देने की राय दी।

जब अरविन्द बाबू आदि कुछ नेताओ को छोड़, प्रायः सभी नरेन्द्र की हत्या के पक्ष में हो गए, तब निश्चय को कार्यरूप मे परिणत करने की सूझी। जेल के अन्दर नरेन्द्र की हत्या कैसे होगी, जबकि उसके साथ बराबर गार्ड रहते है और वह अन्य कैदियों से बिलकुल अलग रखा जाता है? हत्या का भार भी साधारण आदमी नही ले सकते थे, क्योंकि इस कार्य के लिए अत्यन्त विश्वस्त और कार्यकुशल व्यक्ति की आवश्यकता थी। अन्त में सबने मिलकर इस दुसह कार्य का भार इन्ही सत्येन्द्रकुमार के ऊपर डाला।

कार्य-भार लेकर आप बीमार पड़ गए और अस्पताल पहुंचाए गए। अस्पताल

में नरेन्द्र से भेंट हुई। अपने ऊपर उसका विश्वास जमाने के लिए सत्येन्द्र ने उसके सामने अपने को बहुत भयभीत प्रकट किया और कहा कि मैं भी तुम्हारा साथ दूंगा। धीरे-धीरे दोनों मिलकर गवाही की तैयारी करने लगे।

इधर जब तक सत्येन्द्र अस्पताल में थे, बाहरी लोगों के साथ भी पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो गया और अन्त में रिवाल्वर भी मिल गया। सितम्बर में देवव्रत बाबू आदि के विरुद्ध नरेन्द्र की गवाही होने वाली थी। सत्येन्द्र जानते थे कि नरेन्द्र की गवाही से बहुत-से दोषी और निर्दोष फंस जायेंगे, अतः गवाही देने के पहले उसकी हत्या का विचार पक्का कर लिया। कुछ लोगों को इसकी सूचना भी दे दी। सूचना मिलने पर कन्हाईलाल दत्त पेटदर्द के बहाने अस्पताल पहुंचे और दोनों उत्सुकता से नरेन्द्र की बाट जोहने लगे।

पहली सितम्बर को नित्य के नियमानुसार अपने दो यूरोपियन अंगरक्षकों के साथ नरेन्द्र सत्येन्द्र के पास अस्पताल में आया और दुतल्ले की सीढ़ी के पास बैठ गया। सत्येन्द्र ने यह समझकर कि सामने का शिकार क्यों छोड़ूं, अपने कुर्ते के नीचे से हाथ बाहर निकालकर फायर किया। दूसरा वार करते देखकर हिगिन बाथम ने, जो नरेन्द्र का अंगरक्षक था, सत्येन्द्र को पकड़ लिया। सत्येन्द्र ने उसपर भी वार किया। जब उसके हाथ में चोट लगी तब वह इन्हें छोड़कर अलग जा खड़ा हुआ। इधर यह हो रहा था, उधर नरेन्द्र दुतल्ले से नीचे उतरा। नीचे उतरता देखकर कन्हाईलाल दत्त ने उसपर वार किया। निशाना पैर में लगा, लेकिन फिर नरेन्द्र भागता ही गया। कन्हाईलाल ने नरेन्द्र का पीछा किया। सत्येन्द्र भी दौड़े और एक कैदी से पूछा—'नरेन्द्र किधर गया?' कैदी ने धीरे से उंगली का इशारा किया और सत्येन्द्र दौड़कर कन्हाई के साथ हो गया। दोनों गोली चलाने लगे और नरेन्द्र का काम तमाम हो गया।

दोनों पर मुकदमा चलाया गया और दोनों को प्राणदण्ड की सजा हुई। कन्हाईलाल दत्त को 20 वीं नवम्बर, 1908 को फांसी दी गई थी। आपकी मृत देह को पाकर बंगालियों ही ने नहीं, प्रत्युत समस्त भारतवासियों ने, जो कलकत्ते में उपस्थित थे, महान उत्सव मनाया। यह देखकर सरकार ने सत्येन्द्र की लाश जनता को नहीं दी। फांसी के समय के दृश्य को तत्कालीन दर्शक श्रीयुत कृष्णकुमार मित्र ने इस प्रकार बताया है—

"मैं उसकी फांसी के दिन स्वयं जेल में उपस्थित था। यद्यपि नितान्त हृदयहीन फांसी के दृश्य को मैं स्वयं न देख सका, किन्तु मेरे साथियों ने, जिन्होंने उस दृश्य को देखा था, तथा जेल के अधिकारियों ने, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।"

श्रीयुत अविनाशचन्द्र राय, जो सत्येन्द्र के पड़ोसी हैं और जिन्होंने उनके दाहसंस्कार का भार लिया था, अपने एक मित्र को पत्र लिखते हुए लिखते हैं—

"मुझे सन्-तारीख याद नहीं है। सत्येन्द्र की मां ने मेरे घर आकर कहा—

सत्येन्द्र का बड़ा भाई ज्ञानू बीमार है। इसके अंतिम संस्कार के लिए किसे भेजूं ? अब आप ही इस भार को स्वीकार करें। वृद्धा का आदेश मैं टाल नहीं सका। मैं प्रेमतोष बाबू से मिला। उनके प्रयत्न से दाह-संस्कार के लिए बहुत आदमी तैयार हो गए। सत्येन्द्र का चचेरा भाई भी साहस करके हम लोगों के साथ हो लिया। मैजिस्ट्रेट ने हमारे सामने यह शर्तें पेश कीं—

(1) जल से बाहर दाहक्रिया न हो।

(2) कोई आडम्बर और उत्सव न मनाया जाय।

(3) कोई स्मृतिचिह्न नहीं ले जा सकते।

(4) जेल-कर्मचारियों की उपस्थिति में दाहकर्म होगा।

(5) केवल 14-15 आदमी इसमें भाग ले सकेंगे।

" इस प्रकार की शर्तें पेश करने का कारण कन्हाई की लाश का उत्सव था।

" फांसी के दिन प्रातःकाल ही हम लोग अलीपुर जेल के फाटक पर उपस्थित हुए। फांसी के निर्दय दृश्य को देखने की क्षमता हम लोगों में न थी। फांसी हो चुकने पर एक अंग्रेज पुलिस सुपरिंटेंडेण्ट आया और हम लोगों से कहा—यू कैन गो नाऊ. दि थिंग इज़ ओवर. सत्येन्द्र डाइड ब्रेवली. कन्हाई वाज़ ब्रेव, बट इट सीम्स सत्येन्द्र वाज़ ब्रेवर. अर्थात्—अब आप लोग जा सकते हैं। फांसी हो चुकी। सत्येन्द्र वीरतापूर्वक मरा। कन्हाईलाल बहादुर था, लेकिन मुझे मालूम होता है, सत्येन्द्र उससे भी बहादुर था।...अनुसन्धान करने पर एक सार्जेण्ट ने कहा—

"'ह्वेन आई वेण्ट टु हिज़ सेल टु गेट हिम टु दि गैलोज, ही वाज़ वाइड अवेक. ह्वेन आई सेड, सत्येन्द्र बी रेडी, ही आन्सर्ड, वेल आई एम क्वाइट रेडी, एण्ड स्माइल्ड. ही वाक्डस्टेडिली टु दि गैलोज. ही माउंटिड इट ब्रेवली एण्ड बोर इट आल चीयरफुली. ए ब्रेव लैड. अर्थात्—जब मैं सत्येन्द्र की कालकोठरी मे फांसी पर चढ़ने के लिए उसे लेने गया तो मैंने देखा, वह प्रसन्नचित्त है। मैंने कहा, सत्येन्द्र तैयार हो जाओ। उसने उत्तर दिया—तैयार हूं। और मुस्करा दिया। फांसी के तख्ते पर मस्ती के साथ झूमता हुआ गया और वीरतापूर्वक फांसी पर चढ गया। वह एक बहादुर युवक था।

" मृत्यु से पूर्व मैं अपनी पत्नी के साथ दो बार उनसे मिला था। दोनों बार वे प्रसन्नता से हम लोगों के साथ स्वदेशी आन्दोलन की चर्चा करते रहे। उनकी कुछ बातें आज भी याद है। उन्होंने कहा था—मेरे और कन्हाई के मरने से क्या हानि है ? हमारे जैसे हज़ारों के मरने पर ही देश का उद्धार होगा। हमारी मृत्यु शोक मनाने लायक नहीं; बल्कि हर्ष मनाने लायक होगी।

" एक बार मैंने कहा—'तुम्हारी मा तुमसे मिलना चाहती है।' उसने कहा—'यदि वे यहां आकर रोवें नहीं, तभी मैं उनसे मिल सकता हूं, अन्यथा नहीं।' वही

हुआ। वीरमाता ने पुत्र को बलिवेदी की ओर अग्रसर किया। रोते हुए नहीं, बल्कि हंसते हुए। धन्य है ऐसी माता और ऐसा पुत्र ! नरेन्द्र की हत्या के बारे में पूछने पर उन्होंने हत्या करना स्वीकार किया था। मृत्यु के पश्चात् बंगाल के अनेक युवक और युवतियां इन दोनों की मूर्ति बनाकर पूजते रहे।

" जेल में उन्हें जिस अवस्था में रखा गया था, उसे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा था। उन्हें कालकोठरी में रखा गया था। कोठरी पले हुए बाघ के पिंजड़े के सदृश थी। एक तरफ सीखचे थे, दूसरी तरफ दीवार। चार हाथ लम्बी और इतनी ही चौड़ी। सेल में सोना-बैठना, खाना-पीना, पाखाना-पेशाब सब काम करना पड़ता था।

" कड़े पहरे के बीच हम लोग उनसे मिलते थे। पुलिस के अतिरिक्त जेल सुपरिटेंडेण्ट मि० इमर्सन भी सामने रहते थे। दाह के समय आप प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उपस्थित रहे और इस महान वीर की महान वीरगति को देखते रहे। हम लोग कोई स्मृतिचिह्न अपने साथ नहीं ला सके।"

—किसान

श्री मदनलाल ढींगरा

देश की स्वतंत्रता के लिए संसार के एक कोने में बैठकर अपने सारे अस्तित्व तथा व्यक्तित्व को छिपाकर, प्राण देने वाले इस वीर के बाल्य जीवन की कहानी बहुत कुछ ढूढ-तलाश करने पर भी न मिल सकी। वंश, जन्म तथा निवासस्थान के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात हुआ है कि अमृतसर जिले के किसी पंजाबी खत्री के यहां उनका जन्म हुआ था और बी० ए० पास करने के बाद वे इंगलैंड चले गए थे।

इन दिनों इंगलैंड में सावरकर का बडा जोर था। 'इंडिया हाउस' द्वारा जोरों से प्रचार हो रहा था कि कन्हाईलाल और सत्येन्द्र की फासी के समाचार ने वहां और भी उत्तेजना फैला दी। अस्तु, हमारे नायक भी उक्त हाउस के सदस्य बन गए। एक दिन रात के समय सावरकर जी तथा मदनलाल में न जाने बहुत देर तक क्या वातचीत होती रही। अन्त में सावरकर ने उनसे जमीन पर हाथ रखने को कहा। मदनलाल के दोनो हाथ पृथ्वी पर रखते ही सावरकर ने ऊपर से सूवा मार दिया। सूवा उसे छेदकर पार निकल गया और खून की धार बह चली, किन्तु फिर भी उस वीर की आकृति में अन्तर न आया। सावरकर जी ने सूवा दूर फेंक दिया। उस समय दोनो के हृदय प्रेम से गद्गद हो उठे। उनकी आखों से आसुओं की धारा बह चली। हाथ फैलाने-भर की देर थी। दोनों हृदय एक-दूसरे से मिल गए। आंखों के आंसू पोंछते हुए सावरकर ने मदन को छाती से लगा लिया।

अगले दिन इंडिया हाउस की मीटिंग में मदनलाल न आए। कुछ लोगों ने उन्हें सर कर्जन वायली की स्थापित की हुई भारतीय विद्यार्थियों की सभा में जाते देखा था। वायली साहब भारत-मंत्री के एडीकांग थे और भारतीय विद्यार्थियों पर खुफिया पुलिस का प्रवन्ध कर उनकी स्वाधीनता को कुचलने के प्रयत्न में लगे रहते थे। मदन के इस आचरण पर इंडिया हाउस के विद्यार्थियों में आलोचना शुरू हो गई। किन्तु सावरकर के समझाने पर सब लोग चुप हो गए।

सन् 1909 की पहली जुलाई का दिन था। सर कर्जन इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट जहांगीर हाल की सभा में किन्ही दो व्यक्तियों से बातचीत कर रहे थे कि देखते-देखते मदनलाल ने सामने आकर उनपर पिस्तौल का फायर कर दिया। सभा में हाहाकार मच गया और मदनलाल पकड़कर जेल में बन्द कर दिए गए। चारो ओर से उनपर गालियों की बौछारें पड़ने लगी, यहां तक कि स्वयं पिता ने भी सरकार के पास तार भेजा कि मदनलाल मेरा लड़का नही है।

जिस समय इंगलैंड मे विपिन बाबू के सभापतित्व में उनके कार्य के विरोध में सभा हो रही थी और उनपर घृणा का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया जा

रहा था तो सावरकर जी उसका विरोध करने खड़े हो गए। इतने में एक अंग्रेज ने क्रोध मे आकर यह कहते हुए कि 'लुक ! हाउ स्ट्रेट दि इंगलिश फिस्ट गोज़.' उनके एक घूसा मार दिया। पास ही में एक भारतीय युवक खड़ा था। उसने यह कहकर कि 'लुक ! हाउ स्ट्रेट दि इंडियन क्लब गोज़.' उस अंग्रेज के सर पर एक लाठी जमा दी। गड़बड़ हो जाने से सभा विसर्जित हो गई और वह प्रस्ताव पास न हो सका।

अदालत मे मदनलाल ने सब बातें मानते हुए कहा—"मैं मानता हूं कि मैंने उस दिन एक अंग्रेज़ की हत्या की, किन्तु वह उन अमानुषिक दण्डों का एक साधारण-सा बदला है, जो भारतीय युवकों को फांसी और काले पानी के रूप मे दिए गए है। मैंने इस कार्य मे अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त और किसीसे परामर्श नही लिया। एक हिन्दू के नाते मेरा अपना विश्वास है कि मेरे देश के साथ अन्याय करना ईश्वर का अपमान करना है, क्योंकि देश की पूजा श्री रामचन्द्र की पूजा है और देश की सेवा श्री कृष्ण की सेवा है।"

इसके बाद नीरव आकाश की ओर देखकर उस भक्त पुजारी ने कहा—"मुझ जैसे निर्धन और मूर्ख युवक पुत्र के पास माता की भेंट के लिए अपने रक्त के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ! और उसीसे मैं अपने रक्त की श्रद्धांजलि माता के चरणों पर चढ़ा रहा हूं।

"भारत में इस समय केवल एक ही शिक्षा की आवश्यकता है और वह है: मरना सीखना; और उसको सिखाने का एकमात्र ढंग स्वयं मरना है।

"मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मैं बार-बार भारत की ही गोद मे जन्म ले, उसीके कार्य मे प्राण देता रहूं····'वन्दे मातरम्'।"

अन्त को आप वीरतापूर्वक फांसी के तख्ते पर खड़े होकर 'वन्दे मातरम्' की ध्वनि के साथ 16 अगस्त, सन 1909 ई० को अपनी इहलीला समाप्त कर गए।

—वसन्त

श्री अमीरचन्द

श्री अमीरचन्द दिल्ली के मिशन हाईस्कूल में मास्टर थे। उस समय आप स्वामी रामतीर्थ के भक्त थे, बाद मे जब लाला हरदयाल ने अपने विचारों का प्रचार किया, तो आप भी उनसे सहमत हो गए और उसी कार्य का प्रचार करने लगे। आप उर्दू तथा अंग्रेज़ी के अच्छे लेखक थे। 1908 मे जब हरदयाल भारत से चलने लगे, तो दल का सारा भार आपको ही सौंप गए थे।

आप एक जिन्दादिल और आज़ादीपरस्त आदमी थे। हंसी में कहा करते थे कि दिल्ली मे आकर किसीसे भी बन्दर मास्टर का मकान पूछने पर मेरे घर का पता मिल सकेगा।

दिल्ली और लाहौर में बम फेंकने वालों का पता न चला। चारों ओर तलाशी हो रही थी कि कलकत्ता के राजा बाज़ार मे एक मकान की तलाशी होने पर अवधबिहारी का पता निकल आया। ये उन दिनों अमीरचन्द के मकान पर ही रहते थे। शक तो पहले ही से था। अस्तु, तलाशी ली गई और मकान में एक बम की टोपी मिल गई। इसी तलाशी मे लाहौर से लिखा हुआ एक पत्र भी मिला, जिसमे एम० एस० के हस्ताक्षर थे। पूछने पर पता चला कि वह दीनानाथ का लिखा हुआ था। बहुत-से दीनानाथ पकड़ लिए गए। परन्तु बाद में वास्तविक दीनानाथ का भी पता चल गया। उसकी भी तलाशी हुई और गिरफ्तार होने पर उसीने सारा भेद खोल दिया।

आप पर 'लिबर्टी' परिपत्र (लीफलेट) लिखने का अपराध लगाया गया। और विशेषकर नीचे लिखी बातें खास तौर पर आपत्तिजनक मानी गईं—

"वी आर सो मेनी दैट वी कैन सीज़ एण्ड स्नैच फ्राम देम देयर कैनन्स."

और—

"रिफार्म्स विल नाट डू, रेवोल्यूशन एण्ड जनरल मैसेक्र आफ आल दि फारेनर्स, स्पेशली दि इंगलिश, विल एण्ड एलोन कैन सर्व अवर परपज़."

अदालत से आपको फांसी की सजा सुनाई जाने पर आप हंस दिए। उस समय आपकी अवस्था 50 वर्ष की थी। दिल्ली के बड़े-बड़े आदमियो ने सफाई की गवाही में आपके उच्च चरित्र की बहुत प्रशंसा की थी। उसीपर अपील के फैसले मे जज ने लिखा था—

"इट मस्ट बी बोर्न इन माइंड दैट पैट्रीऑट्स आफ अमीरचन्द'स टाइप आर ऑफेन, एक्सीप्ट इन रिगार्ड टु दि मोनोमैनियां पॉज़ेसिंग देम, एस्टीमेबल मैन, एण्ड दि ब्लेमलेस प्राइवेट लाइफ."

अदालत में आप ही के गोद लिए हुए लड़के सुलतानचन्द ने सरकारी गवाह बनकर आपके विरुद्ध गवाही दी थी। किसीने ठीक कहा है—

बागवां ने आग दी जब आशियाने को मेरे।
जिन पै तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे ॥

उस दिन मास्टर अमीरचन्द भी संभल न सके और कोर्ट में ही उनके नेत्रों से झर-झर आंसू गिरने लगे। मनुष्य सब कुछ सहन कर सकता है, परन्तु अपने प्रियजनों का, जिनको हृदय में सबसे ऊंचा स्थान दे रखा हो उनका विश्वासघात सहन करना असम्भव है। आज मास्टर जी जैसा गंभीर और दृढ़चित्त व्यक्ति भी अपने आंसू न रोक सका। उनका वह दत्तक पुत्र आज भी जीवित है और मजे का जीवन व्यतीत कर रहा है।

मास्टर अमीरचन्द ने पुत्र के विश्वासघात पर भले ही अश्रुपात किया हो, परन्तु मृत्युदण्ड सुनकर वे एकदम प्रफुल्लित हो उठे। आप संसार के साधारण व्यक्तियों से बहुत ऊंचे थे। इसका विशेष परिचय उन्होंने सहर्ष फांसी की रस्सी गले में डाल कर दिया। आज वे इस संसार में नहीं, परन्तु उनका नाम है, सुकृति है, उनका विप्लव है। जब कभी देश स्वतंत्र होगा, तब उस महापुरुष की लोग कद्र कर सकेंगे।

—गौतम

श्री अवधविहारी

बी० ए० पास करने के बाद आपने लाहौर सेण्ट्रल ट्रेनिंग कालेज में बी० टी० पास किया था। आप एक बुद्धिमान तथा चतुर युवक थे। जज ने भी फैसले में कहा था—

"अवधबिहारी इज़ ओनली ट्वेंटी फाइव यीअर्स आफ एज, बट ही इज़ ए हाइली एजूकेटिड एण्ड इन्टेलीजेण्ट मैन."

राजा बाजार कलकत्ते में पता मिल जाने पर आप अमीरचन्द के मकान पर ही गिरफ्तार कर लिए गए। उस समय यू० पी० तथा पजाब का नेतृत्व आपके हाथ में था। शचीन्द्र बाबू ने 'वन्दी जीवन' मे आपकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। आप प्राय: निम्नलिखित पद्य गाया करते थे—

एहसान ना खुदा के उठाए मेरी बला,
किश्ती खुदा पे छोड़ दू, लंगर को तोड़ दूं।

अदालत में आपपर कुल 13 अपराध लगाए गए। कहा गया कि लाहौर लारेन्स गार्डन के बम की टोपी इन्होंने बसन्तकुमार के साथ मिलकर लगाई थी और उसमें इनका पूरा हाथ था।

आपको फांसी की सजा दी गई। जिस दिन फांसी होने को थी, उस दिन एक अंग्रेज़ ने आपसे पूछा, "आपकी आखिरी ख्वाहिश क्या है?"

आपने उत्तर दिया, "यही कि अंग्रेज़ी साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाए।"

उसने कहा, "शान्त हो जाइए। आज तो शान्तिपूर्वक प्राण दीजिए, अब इन बातों से क्या फायदा?"

"मैं तो चाहता हूं कि आग भड़के, चारों ओर आग भड़के। तुम भी जलो, हम भी जलें, और हमारी गुलामी भी जले, और अन्त में भारत कुन्दन बनकर रह जाए।"

फांसी के समय आपने स्वयं कूदकर रस्सी गले में डाल ली और 'वन्दे मातरम्' के साथ हंसते-हंसते विदा हो गए।

—विद्रोही

भाई बालमुकुन्द

बहुत दिनों की बात है। तब दिल्ली में औरंगजेब का राज्य था, उन दिनों की धींगामस्ती का क्या कहना ! एक बार हिन्दू नेता श्री गुरु तेगबहादुर बुला भेजे गए। इस्लाम कुबूल करने से इनकार करने पर उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया था। उन्हीके साथ उनके परम भक्त श्री भाई मतिदास जी भी थे। उनको विशेष यातनाओं द्वारा यानी आरे से चीरकर मृत्यु के घाट उतारा गया था। उनका उस समय का साहस तथा गाम्भीर्य देखकर शत्रु तक मुग्ध हो उठे थे। तभी से उनके वंश को भाई की उपाधि दी गई थी।

उसी वैप्लविक वंश ने आज बीसवीं शताब्दी में देश के चरणों पर दो और रत्नों का बलिदान दिया। भाई परमानन्द जी एम० ए० के नाम से कौन परिचित नहीं ? आप ही के चचेरे भाई श्री बालमुकुन्द जी भी थे।

आपका जन्म चकवाल के पास के एक गांव (जिला झेलम) पंजाब में हुआ था। पहले तो उधर ही शिक्षा पाते रहे, बाद में लाहौर डी० ए० वी० कालेज में भरती हुए। बी० ए० पास करने के बाद आपने देशसेवा का व्रत धारण कर लिया, और लाला लाजपतराय जी के तत्कालीन अछूतोद्धार आन्दोलन में काम करने लगे और दूर पर्वतों में जहां पर कि अन्धकार का गढ है, जाकर अनेक असुविधाओं में भी अपना कार्य बहुत उत्साह तथा साहस से करते रहे। उनके सहकारी उनकी संलग्नता और तत्परता की तारीफ आज भी मुक्त कंठ से करते हैं। उधर पंजाब में विप्लव-दल का संगठन कार्य 1908 में सरदार अजीतसिंह और सूफी अम्बाप्रसाद के 1907 वाले आन्दोलन के बादसे शुरू हो गया था। 1909 में बंगाल के एक पलायित वैप्लविक उनके पास पहुचे। तब एक संगठित दल कायम करने का उद्योग होने लगा। उधर 1908 मे श्री लाला हरदयाल जी एम० ए० अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़कर इंगलैंड से लौट आए। उन्होंने एकदम विप्लव का प्रचार शुरू कर दिया था। कुछ ही दिनो में अनेक आदर्शवादी युवक उनके अनुयायी हो गए। इसी बीच में उन्हे भारत छोड़कर यूरोप जाना पड़ा।

कुछ ही दिनों बाद सूफी अम्बाप्रसाद और सरदार अजीतसिंह भी ईरान जाने पर बाधित हुए। तब यह युवक दिल्ली के प्रणम्य शहीद मास्टर अमीरचन्द जी से राजनैतिक शिक्षा पाते रहे। इधर 1910 में श्री रासबिहारी बसु देहरादून में जंगलात के विभाग में नौकरी करने लगे थे और बंगाल की ओर से, बंगाल से बाहर समस्त उत्तर भारत में विप्लव दल संगठित करने का भार आपपर ही पड़ा था। आपने लाहौर में सभी वैप्लविक युवकों का पुनर्संगठन किया और एक कार्य-

कारिणी समिति नियुक्त की गई। उसमें लाहौर के दल का भार श्री बालमुकन्द पर सौपा गया। इस दल की ओर से कई बार 'लिबर्टी' (Liberty) नामक क्रान्तिकारी परचे बांटे गए थे।

1912 मे सर माइकेल ओडायर ने पंजाब की गवर्नरी की बागडोर अपने हाथ मे ली थी। उसी समय उन्हें बताया गया था कि पंजाब मे एक ज्वालामुखी तैयार हो रहा है, जो किसी भी वक्त पर फट सकता है। वह उसीके लिए तैयार होकर शासन का भार ले ही रहे थे कि दिल्ली मे लार्ड हार्डिंग (तत्कालीन वाइसराय) के जुलूस पर चांदनी चौक में बम फेंका गया।

चारो ओर कुहराम मच गया, परन्तु लाख हाथ-पैर मारने पर भी पुलिस बम फेंकने वाले का पता न लगा सकी। पुलिस बहुत छटपटाई। यह घटना 23 दिसम्बर, 1912 की है। मई, 1913 में लाहौर लारेन्स गार्डन मे पंजाब के सभी सिविलियन पदाधिकारी अंग्रेज एकत्र हुए थे। उन्ही सबको उड़ा देने के लिए एक बम वहां पर रखा गया था। परन्तु उस बम के फटने से एक हिन्दुस्तानी चपरासी के सिवा और कोई न मर सका। परन्तु उस समय उसका भी कुछ पता न चल पाया। इधर कुछ दिनों से भाई बालमुकुन्द जोधपुर में राजकुमारों को पढाने का कार्य करते थे।

इधर राजा बाजार, कलकत्ता की तलाशी मे श्री अवधबिहारी का नाम मिल गया। उनकी तलाशी पर दीनानाथ का पता मिला। अनेक दीनानाथ पकड़े गए और प्रमाण न मिलने सकने के कारण छोड दिए गए। परन्तु आखिर एक दिन वास्तविक दीनानाथ भी धर लिए गए। वह बड़ा चरित्रवान, घण्टो ईश्वरोपासना मे तल्लीन रहनेवाला दीनानाथ पकडे जाने पर ज़ार-ज़ार रोने लगा। उस दिन उसका इतने दिनों का संचित साहस न जाने क्या हुआ! कहते हैं, डिप्टी सुपरिंटेंडेण्ट सरदार सुक्खासिंह की लाल-लाल-अंगारे की-सी दहकती हुई आंखें देखकर दीनानाथ ने कांपते हुए कहा—"लीजिए, मैं सब भेद देता हूं, परन्तु दया कर यह आंखें न दिखाएं।" सैकड़ों पृष्ठों का वक्तव्य दिया। रत्ती-रत्ती भर की बात खोल दी। जोधपुर से भाई बालमुकुन्द और एम० ए० के विद्यार्थी श्री बलराज इत्यादि अनेक लोग पकड़े गए। दीनानाथ के वक्तव्य के अनुसार भाई बालमुकुन्द जी के पास उस समय भी दो बम मौजूद थे। उन्हीकी तलाश में उनके गांव वाले घर की तलाशी में दो-दो गज़ तक गहरी ज़मीन खोद डाली गई थी। सारी छतें उधेड़ डाली गई, परन्तु वहां कुछ न मिल सका।

अभियोग चला। वे दिन बडे विचित्र थे। उन दिनों किसी क्रान्तिकारी से सहानुभूति प्रदर्शित करना आग से खिलवाड़ करना था। बड़े-बड़े नेताओं से अभियुक्तों के सम्बन्धियों को घर पर परामर्श लेने आते देखकर धक्के देकर बाहर निकाल दिया गया था। ऐसी दशा में कौन किसकी सहायता करता?

भाई परमानन्द जी ने ही भाई बालमुकुन्द जी के अभियोग में सब प्रबन्ध किया, परन्तु उस मतवाले सैनिक को यह सब एक नाटक-मात्र जान पड़ता था। उन्होंने अन्त मे मृत्युदण्ड सुनने पर सहर्ष केवल इतना ही कहा था—"आज मुझे अत्यन्त आनन्द हो रहा है, क्योकि उसी नगर मे जहां कि हमारे पूर्वपुरुष श्री भाई मतिराम जी ने स्वतन्त्रता के लिए प्राण दिए थे वही पर आज मैं भी—मा के चरणों पर आत्मसमर्पण कर रहा हू।" आखिर उन्हें 1915 के प्रारम्भ में फांसी दे दी गई। घर की हालत अजीब थी। बडी मुश्किल से कुछ रुपया-पैसा जुटाकर भाई परमानन्द जी ने प्रिवी काउन्सिल के लिए वकील को तार दिया था। एक महाशय ने पूछा—"भाई जी ! बालमुकुन्द जी के बारे मे क्या हो रहा है ?" आपने उत्तर दिया—"प्रिवी काउन्सिल मे अपील करने की चेष्टा कर रहे हैं।" फिर पूछा गया—"और स्वयं आपका क्या हो रहा है ? " उत्तर दिया—"खुद भी तैयार बैठे हैं।" इंगलैंड से अपील खारिज होने का तार पहुंचते-न पहुचते भाई परमानन्द जी भी धर लिए गए। तब तक 1915 के विराट विप्लव का सब प्रयास निष्फल हो चुका था। उसीके फलस्वरूप उनकी गिरफ्तारी हुई थी।

इधर भाई बालमुकुन्द जी को फांसी हो गई। उस दिन, कहते हैं, उनके आनन्द की सीमा न रही थी। सिपाहियों से पंजा छुड़ाकर फांसी के तख्ते पर जा खड़े हुए थे। ओह ! ऐसा साहस इन विप्लविको के अतिरिक्त और कहा मिलेगा ? मृत्यु के प्रति इतनी उपेक्षा दिखाने का साधारण दुनियादार लोग साहस नही कर सकते।

आपके सुन्दर बलिदान को आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरक्खी ने सती होकर और भी चार चांद लगा दिए। बात यह थी कि वे उनसे बहुत प्यार करती थी। विवाह हुए भी अभी बहुत दिन नही हुए थे, वे उनसे जेल मे मिलने गईं। पूछा—भोजन कैसा मिलता है ? उत्तर मे जेल की बालू मिली रोटी दिखाई गई। घर आकर वैसा ही भोजन तैयार कर खाने लगी। फिर मिली। कहा, सोते कहां पर हैं ? उत्तर मिला—'इस ग्रीष्म ऋतु मे भी अन्धकारमय कोठरी मे दो कम्बल ओढकर।' घर आकर वैसे ही रहना शुरू कर दिया। एक दिन बाहर से रोने-धोने का शब्द सुनकर उन्होंने सब कुछ समझ लिया। उठी, स्नान किया, वस्त्राभूषण पहनकर श्रृंगार किया और अपने प्रियतम से मिलने के लिए तैयार होकर घर के अन्दर एक चबूतरे पर बैठ गईं। फिर वे नही उठी। दूर, जहां तक स्थूल दृष्टि देख सकती है, जहां तक आततायी शासकों का कानून-विधान पहुंच सकता है, उससे बहुत दूर—उस पार, जहा पर जेल नही, फांसी नही, विप्लव नहीं, पराधीनता नही, केवल प्रेम ही प्रेम है, उसी लोक में वे अपने चिर प्रियतम बालमुकुन्द जी से अनन्त काल तक सहवास का आनन्द उठाने के लिए चली गईं।

—रमेश

श्री बसन्तोकुमार विस्वास

आप बंगाल के नदिया जिला के रहने वाले थे और जिस समय श्री रासबिहारी जी देहरादून में थे, आप उनके पास हरिदास के नाम से नौकर बनकर रहते रहे। बाद में 1912 में आप लाहौर की एक डिस्पेन्सरी में कम्पाउण्डर हो गए थे।

उस समय भाई बालमुकुन्द के साथ मिलकर आप पंजाब प्रान्त में विप्लव दल का संगठन करते थे। कहा जाता है कि 1912 में दिल्ली में बम फटा था तो आप लाहौर से गायब थे।

अवधबिहारी की सहायता से लाहौर लारेन्स गार्डन का बम भी आप ही का रखा हुआ बताया जाता है। बाद में आप दो और भी बम लाए थे, जो दीनानाथ के कहे अनुसार भाई बालमुकुन्द के पास रखे गए थे।

दिसम्बर, 1913 में आप बंगाल चले गए और 1914 में वहीं से गिरफ्तार कर लाहौर लाए गए। अदालत से पहले आपको आजन्म काले पानी की सजा मिली थी; किन्तु सर ओडायर को दिल्ली में बम फेंकनेवाले का पता न लगने से बड़ा क्रोध आ रहा था और उसने आपको भी फांसी की सजा दी जाने की अपील की। इसे उसने स्वयं माना है। भला पुलिस की अपील और उसपर सिफारिश सर माइकेल ओडायर की, और फिर न मानी जाती? अस्तु, आपको भी बाद में फांसी की सज़ा सुना दी गई। आपके बारे में जज ने कहा था—

"ही लुक्ड टु मी ए मैन आफ सम फोर्स आफ कैरेक्टर. विद नन आफ दि फेमिलियर मार्क्स आफ वीकनेस इन हिज़ फेस."

फांसी के समय आपकी आयु केवल 23 वर्ष की थी।

—विद्रोही

भाई भागसिंह

अच्छे घराने मे जन्म लेकर और ऊंची शिक्षा प्राप्त कर देश तथा जाति की सेवा मे जीवन समाप्त कर देने वाले तो संसार में अनेक होते रहे है और होते रहेंगे, किन्तु गांव के एक साधारण घराने मे पैदा होकर और मामूली-सी शिक्षा प्राप्त करके भी जिन्होने अपने कार्यो से मानव-समाज को चकित किया है, ऐसे उदाहरण इतिहास मे विरले ही देखने मे आते हैं।

हमारे नायक श्री भाई भागसिंह जी भी ऐसे ही उंगली पर गिने जाने वाले रत्नों मे से एक है। आपका जन्म लाहौर जिले के 'भिक्खीविण्ड' नामक गाव मे सरदार नारायणसिंह जी के घर, सन् 1878 ई० मे हुआ था। आपकी माता का नाम मानकुवारि था। 20 वर्ष की आयु तक आप घर पर ही रहकर खेती-बाड़ी का काम देखते रहे। इसी बीच गुरुमुखी का भी थोडा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बस, शिक्षा के नाते इतने ही को सब कुछ समझना चाहिए। आप बचपन से ही सैनिक स्वभाव के थे। अस्तु, 20 वर्ष की अवस्था होने पर फौज मे नौकर हो गए। आजाद तबीयत के तो मशहूर ही थे, फिर भला किसीकी डाट-डपट क्यो सहने लगे? सेना में आज किसीसे झगड़ा हो रहा है तो कल किसीको डांट बताई जा रही है। सभी लोग और विशेषकर अफसर लोग, आपसे बहुत तंग रहा करते थे। इन्ही सब बातों से पाच साल तक नौकरी करने पर भी आप एक मामूली सिपाही से आगे न बढ़ सके।

बाद मे सेना से नौकरी छोड, घर आए बिना ही आप चीन चले गए औरहागकाओ पुलिस मे भरती हो गए। ढाई साल काम करने के बाद वहा भी जमादार से अनबन हो गई और आप शघाई आ गए। यहां पर ढाई साल तक म्युनिसिपल पुलिस में काम करने के बाद, आए दिन बहुतेक भारतीयो को अमेरिका की ओर जाते देख, आप भी कैनेडा चले गए। बस, यही से आपका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ होता है।

अस्तु, कैनेडा पहुंचकर विचार तथा स्वभाव मिल जाने पर भाई बलवन्तसिह, भाई सुन्दरसिह, भाई हरनामसिह और अर्जुनसिंह से आपकी घनिष्टता हो गई। इस समय कैनेडा-स्थित भारतीयों पर वहां के रहनेवाले बड़ा अत्याचार कर रहे थे। यहा तक कि बहुत प्रयत्न करने के बाद भी उन्हें कही कोई जगह न मिलती थी। उनमें आपस मे फूट थी। सभी अपनी-अपनी ही सोचा करते। ऐसे विकट समय मे उपरोक्त मित्र-मण्डली ने आगे पैर बढाया। प्रारम्भ करने भर की देर थी, कार्य चल निकला। और जहां पहले एक भी गुरुद्वारा न था, वहा प्रायः सभी स्थानों

पर गुरुद्वारे स्थापित हो गए। सभी बिखरी हुई शक्ति को केन्द्रस्थ कर संगठन प्रारम्भ कर दिया गया। कैनेडा में भारतीयों को एक भारतीय की तरह जीवन व्यतीत करने तक की स्वतंत्रता न थी। वे अपने सम्बन्धियों के मृत शरीर को जला नहीं सकते थे, उन्हें उसकी कब्र बनानी पड़ती थी। अस्तु, इन लोगों ने कुछ जमीन खरीदी और उसमें श्मशान स्थापित किया। इस श्मशान में पहला संस्कार भाई अर्जुनसिंह का ही हुआ।

भला इमिग्रेशन वाले भारतीयों की इस उन्नति को कब देख सकते थे? अस्तु, एक ओर तो कैनेडा के भारतवासियों को होण्डुरास भेजने का प्रयत्न होने लगा और दूसरी ओर एक नया कानून गढा गया। इस कानून के अनुसार कोई भी नया भारतीय कैनेडा में नही उतर सकता था। आपने अपने अन्य मित्रों की सहायता से इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। दो आदमी होण्डुरास की दशा देखने भेजे गए। इन लोगों ने आकर रिपोर्ट दी कि होण्डुरास नरक से भी गया-बीता स्थान है। अपने प्रयास में विफलता देख इमिग्रेशन वालों को इनपर बड़ा क्रोध आया। उधर नये कानून के विरुद्ध निश्चय हुआ कि जो लोग कैनेडा में पहले से रह रहे हैं वे भारत जाकर अपना परिवार आदि लेकर फिर वापस आ सकते है। किन्तु निश्चय को कार्यरूप में भी तो लाना था। अतः हमारे नायक अपने अन्य दो मित्रों के साथ भारत की ओर चल दिए।

भारत तो आ गए, किन्तु अब परिवार कहां से ले जाएं? स्त्री का स्वर्गवास हो चुका था और बाल-बच्चे थे नही, अत. आपने पेशावर की एक स्त्री से फिर से ब्याह किया और उसे लेकर वापस चल दिए। हागकांग आकर मालूम हुआ कि कैनेडा जाने के लिए टिकट न मिल सकेगा। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी आपको वहां पर बहुत समय तक ठहरना पड़ा और यही पर आपके पुत्र श्री जोगेन्द्रसिंह जी का जन्म हुआ। आखिर बहुत प्रयत्न करने के बाद वैंकोवर पहुंचने पर बहुत अड़चनो के बाद आपको जहाज़ से उतरने दिया गया।

अभी तक आप अधिकाशतया धार्मिक कार्यों में ही भाग ले रहे थे, किन्तु इस यात्रा के अनुभव ने आपके विचारों मे एक नया परिवर्तन पैदा कर दिया। आपको यह विश्वास हो गया कि गुलामो के लिए संसार के किसी भी कोने मे स्थान नहीं है और जब तक भारत की पराधीनता दूर नही होती, हमें इसी प्रकार पग-पग पर अडचनो का सामना करना पडेगा। प्रसंगवश. इसी बीच अमेरिका से 'गदर' अखबार निकलना प्रारम्भ हुआ। उस समय भागसिह जी ने जी खोलकर रुपये-पैसे से इस पत्र की सहायता की थी। इतना ही नही, वरन् संयुक्त प्रान्त से निकलने पर भी 'गदर' अखबार तथा उसकी नीति का प्रचार अधिकांशतया कैनेडा में ही हुआ था।

अभी इमिग्रेशन वालों से झगड़ा चल ही रहा था कि कामागाटामारू जहाज़

कनैडा आ पहुंचा। इस जहाज़ वालों पर क्या-क्या अत्याचार हुए ? किन-किन मुसीबतों का सामना उन लोगों को करना पड़ा ? और उन वीरों को सताने के लिए किन-किन घृणित उपायों का प्रयोग किया गया ? यह सब तो यहां पर नहीं दिया जा सकता, किन्तु जहां तक हमारे नायक से इसका सम्बन्ध है, उसका उल्लेख यहां पर किए देता हूं। इमिग्रेशन विभाग वालों ने जब इस जहाज़ को कहीं पर भी ठहरने की आज्ञा न दी तो श्री भागसिंह जी के प्रबन्ध से एक नया घाट खरीदा गया और वहीं पर उक्त जहाज़ को ठहराया गया। इसी बीच एक दूसरी चाल चली गई। जहाज के मालिक को अपनी ओर मिलाकर इस बात पर राज़ी किया गया कि वह जहाज़ का किराया किस्त पर न लेकर, एकसाथ ही पेशगी ले ले। जहाज वाले बड़ी मुसीबत में फंस गए। पास में इतना रुपया तो था ही नहीं। अभी कुछ सामान भी न बिक पाया था, अतएव करें तो क्या करें ? किन्तु भागसिंह जी तथा उनके मित्रों ने मिलकर किस्त का रुपया अदा किया और जहाज़ का चार्टर अपने नाम पर लिखवा लिया।

यह सब प्रबन्ध कर चुकने के बाद साउथ ब्रिटिश कोलम्बिया में अपने किन्हीं साथियों से इसी बात पर सलाह करने गए थे कि वहीं पर हरनामसिंह और बलवन्तसिंह जी के साथ आप गिरफ्तार कर लिए गए, किन्तु बाद में आपको तथा बलवन्तसिंह जी को छोड़ दिया गया। उस समय जहाज़ वापस जाने के लिए तैयार था। बहुत-से लोगों के पास खाने तक को रुपया नहीं रह गया था, इसलिए आपने आते ही उन लोगों की सहायता आदि का पूरा प्रबन्ध कर दिया।

जहाज की सहायता करने तथा स्वाधीनता का प्रचार करने के कारण आप इमिग्रेशन वालों की आंखों में बुरी तरह खटकने लगे। जोश में आकर कई बार उन लोगों ने कह भी डाला था कि इसे गोली से मरवाकर ही छोड़ेंगे। उस समय आपने इस बात को हंसकर टाल दिया था। और लोगों ने भी इसपर कोई विशेष ध्यान न दिया था। उन्होंने सोचा, यह सब कहने की बातें हैं, ऐसा करने के लिए कोई विशेष साहसी पुरुष चाहिए।

एक दिन की बात है कि आप किसी सिक्ख का अन्तिम संस्कार कराकर आए, गुरुद्वारे में दीवान शुरू हुआ और आप गुरुग्रन्थ साहब का पाठ करने बैठे। सब काम शान्तिपूर्वक समाप्त हो गया और जब आप 'अरदास' के बाद मत्था टेकने के लिए झुके तो पीछे बैठे हुए बेलासिंह ने पिस्तौल चलाया। गोली पीठ को पार करती हुई फेफड़ों में आ रुकी। घातक को पकड़ने के व्यर्थ प्रयास में भाई बतनसिंह भी मारे गए। इनका जीवन अन्यत्र दिया जा रहा है।

भागसिंह जी अस्पताल लाए गए। आपरेशन होने पर भी आप पूर्णतया होश में रहे और बराबर लोगों को उत्साह देते रहे। जिस समय आपका लड़का आपके सामने लाया गया तो आपने कहा, "यह लड़का मेरा नहीं, वरन् कौम का है, इसे

दरबार में ले जाओ। मेरे पास क्यों लाए हो?" उस समय कितने ही मनुष्य आपके दर्शनों के लिए अस्पताल में मौजूद थे। अन्त मे यह कहते हुए कि "मेरी तो इच्छा थी कि आजादी की लड़ाई मे आमने-सामने दो-चार हाथ करके प्राण देता, किन्तु भाग्य में बिस्तर पर पड़े-पड़े ही मरना लिखा था। खैर, ईश्वर की यही इच्छा थी।" अपनी इहलीला समाप्त कर गए। मृत्यु के समय आपकी अवस्था 44 वर्ष की थी।

अन्त में घातक को अदालत ने यह कहने पर छोड दिया था कि "मैंने तो सब कुछ इमिग्रेशन विभाग के अध्यक्षों के कहने पर ही किया था। मैं सरकार का एक वफादार नौकर हूं और यदि मुझे इस समय गिरफ्तार न किया जाता तो मैं लड़ाई पर जाकर अपनी वफादारी दिखाता।" आदि-आदि।

हाय रे गुलामी !

—नटवर

भाई वतनसिंह

वे वास्तव मे क्या थे, इस बात को लोगों ने उनकी मृत्यु से पहले कभी न समझ पाया था। उनका साधारण-सा जीवन था और उन्हें कभी नेता कहलाने का भी सौभाग्य नही मिला। किन्तु फिर भी उनका हृदय देश-प्रेम से खाली न था। वे केवल मरना जानते थे और वह भी एक सच्चे वीर की भांति।

बाल्य-जीवन के सम्बन्ध मे केवल इतना ही मालूम है कि आप पटियाला राज्य के 'कुम्बड़वाल' नाम के गांव में पैदा हुए थे और पिता का नाम भाई भगेलसिंह जी था। आप मे एक विशेष बात यह थी कि आपको भैंस पालने का बड़ा शौक था और इसी कारण कैनेडा में भी लोग इन्हें वतनसिंह भइयांवाला अर्थात् भैंसवाला कहा करते थे।

बाइस-तेइस वर्ष की आयु तक घर ही पर रहने के उपरान्त आप सेना मे भरती हो गए। उस समय तक आपके जीवन का अधिकांश बर्मा मे ही बीता था। फिर पांच साल के बाद, नौकरी छोड़कर घर वापस चले आए और दस साल तक मकान ही पर रहकर खेती आदि का काम करते रहे। किन्तु उन्हें तो भारतीयो के सामने एक उदाहरण उपस्थित करना था, अतएव इस प्रकार घर पर कब तक रह सकते थे! घर के कामो से जी उकताने लगा और अन्त में आप हागकांग की ओर चल दिए। यहां पर पाच साल तक जेल-पुलिस में गार्ड का काम करने के बाद आप कैनेडा पहुंचे।

वेंकोवर तो पहुंच गए, पर अब जाएं तो किसके पास! एक तो अपरिचित देश, फिर किसीसे भी जान-पहचान नही। बहुत खोज-खबर के बाद गुरुद्वारे का पता चला और आप वही जाकर ठहर गए। उस समय किसीको तो क्या, वतनसिंह जी स्वयं भी इस बात को न जानते थे कि एक दिन इसी गुरुद्वारे मे मानव समाज को वीरता का पाठ पढ़ाकर मुझे अपनी इहलीला समाप्त करनी पड़ेगी। खैर, कुछ दिन वहां ठहरने के बाद आप मुड़ी पोर्ट के लकड़ी के कारखाने में भरती हो गए। इन दिनों भागसिंह जी इसी कारखाने में काम करते थे।

स्वाधीनता की लहर अभी जोरों से न चली थी, इसलिए सिक्ख लोगों का ध्यान विशेषकर आपस में विद्या-प्रचार ही की ओर अधिक था। हमारे नायक भी जब कभी अवकाश पाते तो इन्ही बातो की चर्चा किया करते। सन् 1911 ई० में वतनसिंह जी फिर वेंकोवर आ गए। राइट पोर्ट पर काम करने के साथ-साथ सत्संग का अच्छा अवसर हाथ आया देख आपने नित्य ही गुरुद्वारा जाना आरंभ कर दिया। एक साल तक आप गुरुद्वारा कमेटी के मेम्बर भी रहे थे।

आपकी कार्यतत्परता से लोग आपको बहुत मानने लगे थे।

इसके बाद वही पुरानी कथा है। वही इमिग्रेशन वालों से झगड़ा, वही अत्याचार, वही आन्दोलन और वही भाई भागसिंह तथा बलवन्तसिंह को मारने का षड्यन्त्र। उस समय लोग सैंकड़ों की संख्या में भारत की ओर वापस आ रहे थे। कहते हैं कि यह षड्यंत्र इसलिए रचा गया था कि सिक्खों का कोई भी नेता भारत में वापस आकर यहां भी उसी प्रकार के विचारों का प्रचार न कर सके। खैर, जो हो, उस दिन जब दीवान मे बेलासिंह ने भाई भागसिंह जी पर गोली चलाई तो वतनसिंह जी भी उनके पास में ही बैठे थे। भागसिंह को घायल होते देख, आपने गरजकर घातक को ललकारा। बस, अब क्या था, दूसरी गोली बलवन्तसिंह की ओर न जाकर, हमारे नायक के वक्षस्थल में समा गई। वीर का जोश चोट खाकर ही जागता है। आप सिंह की भांति गरजकर उसकी ओर दौड़े। लो, दूसरी गोली भी सीने के बीच में ही रह गई। किन्तु इससे क्या, वतनसिंह बढ़ते ही चले गए और अंत में सात गोलियां लग चुकने के बाद आपने घातक की गर्दन पकड़ ही तो ली। परन्तु शक्ति अधिक क्षीण हो जाने के कारण बेलासिंह छुड़ाकर भाग गया और आप सदैव के लिए गहरी नीद में सो गए। जिस गुरुद्वारे में अभी थोड़ी देर पहले निस्तब्धता का राज्य था, वही अब रणभूमि बन गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। अभी एक भाई के विछोह का दुख भूला भी न था कि दो रत्न और छिन गए।

भाई वतनसिंह जी अब नही हैं। पर पचास वर्ष की आयु में उन्होंने एक सच्चे वीर की भांति प्राण देकर जो उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर अंकित किया है, वह सदैव के लिए अमिट रहेगा।

—चक्रेश

श्री मेवासिंह

विपत्ति के आगन मे खेलकर भी जिन लोगो ने सदैव ही पीछे रहकर कार्य करने की चेष्टा की है—इसलिए नही कि वे डरते थे, किन्तु इसलिए कि आगे बढ़कर वाहवाही लेने की इच्छा ही कभी उनमे उत्पन्न नही हुई—ऐसे लोगो के बाल्यकाल से ही यदि ज्योतिषी लोग यह जता दिया करें कि यह किसी दिन पगले विप्लवी बनकर अपना सर्वस्व लुटा देंगे, किसी दिन ये उन्मत्त होकर 'धरि मृत्यु साथे पंजा' नाचते-नाचते फांसी के तख्ते पर जा खड़े होंगे, तो शायद उनका जीवन-वृत्तान्त पूरे तौर पर लिखा जा सके। किन्तु वे तो संसार के न जाने किस कोने से अचानक आकर मानव-समाज के चरणों पर एकाएक अपना सर्वस्व लुटाकर चले गए। उस दिन आश्चर्य से लोगों ने उनकी ओर देखा। भक्ति तथा श्रद्धा के फूल भी चढाए। किन्तु फिर भी उनके विद्रोही जीवन की दो-चार घटनाओं को एकत्रित कर प्रदर्शित करने की परवाह किसीने भी न की। आज यदि ऐसे आदर्शवादी का जीवन-वृत्तान्त लिखने बैठें तो लिख ही क्या सकते हैं ?

अज्ञात विप्लवी हमारे नायक श्री मेवासिंह का जन्म अमृतसर के एक साधारण-से गांव 'लोपोके' में हुआ था। बस, वंश तथा बाल्य-जीवन का इतना ही ज्ञान पर्याप्त है। वे साधारण कृषक थे और खेती-बाड़ी करते थे। कैनेडा आदि की ओर आए दिन अनेकानेक लोगों को जाते देख आप भी वही चले गए थे। आपका ईश्वर-भक्ति की ओर विशेष झुकाव था।

कैनेडा मे भारतवासियों पर किए गए अत्याचार, अन्याय और घृणित व्यवहार से आपके हृदय को एक विशेष चोट लगी। कामागाटामारू के विषय में जब भागसिंह जी और बलवन्तसिंह जी किन्ही अन्य सहकारियो से कुछ मन्त्रणा करने दूर दक्षिण की ओर निकल गए थे और इमिग्रेशन विभाग वालो ने उन्हें पकड़कर 'सुभास' जेल मे बन्द कर दिया था, तब आप भी उनके साथ थे। परन्तु आपको, केवल इतना कहने पर ही कि इधर यों ही चले आए थे, छोड़ दिया गया था। बाद में आप गुरु नानक माइनिंग कम्पनी के हिस्सेदार भी बन गए थे।

दीवान हो रहा था। श्री भागसिंह जी गुरुग्रन्थ साहब का पाठ कर रहे थे और श्री वतनसिंह जी उन्हींके पास बैठे थे। एकाएक सभा की निस्तब्धता भंग करते हुए एक पिस्तौल की आवाज़ आई और देखते-देखते श्री भागसिंह जी और श्री वतनसिंह जी सदा के लिए धराशायी हो गए। देशद्रोही बेलासिंह के घृणित कार्य को देखकर हृदय वेदना से कराह उठा। उन्हे गुरुग्रन्थ साहब का पाठ करते समय गोली से मार दिया जाना असह्य हो उठा। अभियोग चलने

पर कातिल ने बयान किया कि इमिग्रेशन विभाग के अध्यक्षों ने ही मुझे ऐसा करने के लिए कहा था। गुलाम भारतवासियों की दुर्दशा का रक्तरंजित चित्र देखकर उनकी आंखों मे आंसू आ गए। क्योंकि वे पराधीन थे, इसलिए उन्हें सब जगह घृणा की जाती थी। क्योंकि वे गुलाम थे इसलिए उन पर सब तरह के अत्याचार ढाए जाते थे और क्योंकि वे पराये दास थे, इसलिए उनके नेताओं को यों ही मरवा दिया गया। इन सब वातों से उनके हृदय पर एक गहरी चोट लगी। उन्होने अपनी आन्तरिक वेदना को छिपाने के लिए ईश्वर भजन की ओर विशेष ध्यान देना शुरू कर दिया। परन्तु इस पर भी आपने दो-एक बार बड़े वेदना भरे स्वर में कहा था, "यह अपमानित और पराधीनता का पद-पद पर ठुकराया जाने वाला जीवन अब असह्य हो उठा है।" उस समय उनके इन वाक्यों पर किसी ने ध्यान भी न दिया था।

वे 'विप्लवयज्ञ' की प्रगाढ़ रचना के दिन थे। लोगों ने रायफल तथा रिवाल्वर चलाने का अभ्यास शुरू कर दिया था। कहते है, हमारे नायक ने भी एक सौ रुपये की गोलिया फूक डाली थी। उनकी इस वात पर भी किसी ने कुछ विशेष ध्यान न दिया। एक दिन जाकर अपना फोटो बनवा लाए। यही उनका अपने घर वालों के लिए अन्तिम अमूल्य उपहार था।

उस दिन मुकदमे की पेशी थी। इमिग्रेशन विभाग के मुख्याधिकारी मि० हापकिन्सन भी पेश होने आए थे। सब कार्य शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो रहा था कि एकाएक गोली चली और पूर्व इसके कि फायर करने वाले की ओर कोई ध्यान दे सकता, हापकिन्सन सदा के लिए धाराशायी हो गए। निशाना अचूक बैठा। वह शत-प्रतिशत सफल हो गया। जज लोग कुर्सियो के नीचे जा छिपे और वकील लोग गिरते-पडते बाहर की ओर भाग चले। हापकिन्सन को गिरता देख आपने अपना रिवाल्वर जज की मेज पर रखकर उच्च स्वर से कहा—"मैं भागना नहीं चाहता। आप लोग शान्त हो जाइए। मैं पागल नही हूं, और किसी पर गोली नही चलाऊंगा। मेरा कार्य सफल हो चुका।" इसके बाद पुलिस वालों को पुकारकर चुपचाप आत्मसमर्पण कर दिया। उथल-पुथल मे चाहते तो भाग जाते, पर उस वीर विप्लवी की इच्छा अब और जीने की न थी। पतित, पराधीन तथा पददलित भारत में अभी तक प्राणों का कोई अंश शेष है, यही वे आत्मवलिदान से सिद्ध करना चाहते थे। आज भी वे अपमान का प्रतिकार कर सकते हैं, आज भी वे राष्ट्रीय अपमान का वदला ले सकते है, यही जताने के लिए उन्होंने यह सब किया था।

गिरफ्तारियों के बाद बयान लेते समय जब आपसे हापकिन्सन को मारने का कारण पूछा गया तो आपने प्रश्न किया—"क्या हापकिन्सन सचमुच मर गया?" उत्तर में "हा" सुनकर आप वड़े जोरो से हंस दिए। कहा—"आज मुझे वास्तविक

आनन्द प्राप्त हुआ है।" पूछने पर आपने कहा—"हापकिन्सन को जान-बूझकर कत्ल किया है। यह वदला है देश तथा धर्म के अपमान का; यह वदला है हमारे दो अमूल्य रत्नों की हत्या का। मैं तो मिस्टर रीड (हापकिन्सन के दूसरे साथी) को भी मारने के विचार से आया था, परन्तु वहां न होने के कारण वह वच गया।"

हापकिन्सन की स्त्री ने अपने पति की हत्या का समाचार सुनकर कहा था कि मैं उस वीर के दर्शन करना चाहती हू, जिसने मेरे पति को भरी कचहरी में गोली से मारा है, और इस धैर्य के साथ आत्मसमर्पण किया है।

इस घटना के वाद कैनेडा में भारतीयों को किसीने घृणित शब्दो से सम्वोधित नही किया।

अभियोग चलने पर आपने वीरतापूर्वक सारा अपराध स्वीकार किया। मृत्यु-दण्ड सुनाए जाने के वाद से तो आपपर एक नशा-सा छा गया। आनन्द की सीमा न रही। फांसी के दिन तक आपका वजन 13 पौंड वढ गया था।

फांसी के दिन जेल के वाहर तपस्वी के अन्तिम पुण्य दर्शन के लिए कैनेडा-स्थित प्रवासी भारतीयों का मानव-समुद्र उमड आया था। इस समुद्र मे गोरे लोगों की संख्या भी कुछ कम न थी। नियमानुसार मरने से पहले पादरी अथवा पुरोहित का मिलना आवश्यक था। अस्तु, भाई मितसिंह जी अन्दर गए। ईश्वर-भजन के वाद आपने अपना अन्तिम सन्देश दिया। शब्द साधारण है, किन्तु भाव ऊचे और देशभक्तिपूर्ण हैं। आपने कहा—

"वाहरजाकर सभी भारतवासियो से और विशेषकर राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं से कह देना कि इस गुलामी और पराधीनता के अभिशाप से बच निकलने के लिए जोरों से प्रयत्न करें। परन्तु कार्य तभी हो सकेगा, जब उनमें इलाकेवन्दी और मजहबी असहनशीलता विलकुल न रहे। न माझे, मालवे और दोआबे* के प्रश्न उठें और न हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख; विभिन्न मजहबों के प्रश्न उठें। और जो मुझे प्यार करनेवाले सम्बन्धी अथवा मित्र है, उनसे तो मेरा विशेष आग्रह है।"

वात करते-करते मितसिंह जी की आखों मे आसू आ गए। इसपर आप वहुत नाराज हुए। आपने कहा—"अच्छा मेरा साहस बढाने आये थे! आप ही रोने लगे। जरा सोचिए तो सही, फिर हमारी क्या दशा होनी चाहिए! ऐसी मृत्यु तो कही सौभाग्य से प्राप्त होती है, उसपर हर्ष और चाव न दिखाकर, इस तरह शोक करना तो एकदम अनुचित है।"

---

*दोग्राव, सतलुज ग्रौर व्यास के बीच का इलाका है। मालवा सतलुज के पूर्व का (फिरोज-पुर वगैरह) प्रदेश है। माझा, रावी ग्रौर व्यास के बीच का (लाहौर व ग्रमृतसर) भाग है। सिक्खो मे इन इलाको का कुछ झगड़ा बहुत दिनों से चला ग्राता है।

अन्त को वही घड़ी आ गई। ओह, देखो तो वह पगला किस भाव से फांसी के तख्ते की ओर बढ रहा है! भय और चिन्ता तो उसके पास तक नहीं है। आखिर यह शब्द गाते हुए, "हरि-यश, रे मन, गा ले जो संगी है तेरा", आप फांसी के तख्ते पर जा खड़े हुए। इसके बाद क्या हुआ, सो पाठक स्वयं ही समझ लें। गुरु गोविन्दसिंह का अनुयायी 'सर धर तली' प्रेम की गली में प्रेम खेलने आया था, सर दे गया।

शव के स्वागत के लिए मानव-समुद्र पहले ही से बाहर हिलोरें ले रहा था, अतः बड़ी शान से जुलूस निकाला गया। आज इन्द्र देवता भी अपने पर काबू न रख सके, खूब वर्षा होने लगी। किन्तु जुलूस कम न हुआ। यहां तक कि अंग्रेज स्त्रियां भी उसका साथ न छोड़ सकीं। अन्तिम संस्कार के बाद एक सप्ताह तक गुरुद्वारे में उत्सव मनाया गया।

—कोविद

श्री काशीराम

आप उन्ही अज्ञात सप्तऋषियो में से एक है, जिन्हें न्यायप्रिय सरकार ने फिरोज़पुर ज़िले में एक गाव के पास मारे जाने वाले थानेदार की हत्या के अपराध में सदा के लिए भारत की गोद से उठा लिया था और अन्त में वास्तविक अपराधी के मिल जाने पर केवल इतना कहकर कि "जो सात मनुष्य पहले फासी पर लटकाए गए थे वे वास्तविक अपराधी न थे और असल अपराधी तो यह है, जिसे हम आज फासी दे रहे है।" अपने दायित्व से अलग हो गई थी। अस्तु, पंडित काशीराम जी का जन्म अम्बाला ज़िले के 'बड़ी मड़ौली' नामक गांव में भादो सुदी द्वादशी, सम्वत् 1938 मे श्री पंडित गंगाराम जी के घर हुआ था। घरवालो ने दस वर्ष की ही अवस्था में आपकी शादी कर दी थी, किन्तु आजादी की शराब पीने वालो को स्त्री-बच्चों का मोह रोककर घर पर नही रख सकता। अस्तु, पटियाला से इट्रेन्स पास करने के बाद आप घर से इस प्रकार बाहर हुए कि फिर 1914 ई० मे कुछ घण्टो के लिए ही अपने गाव मे वापस आए। इसी विछोह में आपकी स्त्री का शरीरान्त भी हो गया था।

पढाई समाप्त कर, कुछ दिन तार का काम सीखने के बाद, आप अम्बाला ज़िला दफ्तर मे 30 रु० मासिक पर नौकर हो गए। बाद मे, कुछ दिन दिल्ली में 60 रु० मासिक पर नौकरी कर, आप हांगकांग चले गए और अन्त में अमेरिका जाकर एक बारूद के कारखाने में 200 रु० मासिक पर नौकर हो गए। किन्तु बाद में इसे भी गुलामी कहकर छोड़ दिया और एक टापू की सोने की खान का ठेका ले लिया।

इसी बीच अमेरिका से भारत वापस आने की लहर चली और आप भी एक जत्थे के साथ 25 या 26 नवम्बर सन् 1914 में भारत आ गए। देश आने पर एक बार फिर उसी स्थान को देखने की इच्छा से, जहां धूल मे खेलकर आपका बाल्यकाल बीता था, वे अपने गाव पहुचे। यह समाचार विजली की भांति सारे गाव मे फैल गया और आपसे मिलने को एक अच्छी भीड़ जमा हो गई। आपने अवसर हाथ आया देख, वही पर गदर के सम्बन्ध मे एक व्याख्यान दे डाला।

कुछ घण्टे मकान पर ठहरने के बाद, यह कहकर कि लाहौर नेशनल बैंक में मेरे तीस हज़ार रुपये जमा हैं, उन्हें लेने जाता हूं, आप फिर घर से बाहर हुए। गांव वालों के लिए आपका यह अन्तिम पुण्य दर्शन था। फिर लौटकर न आए।

लाहौर आने पर कुछ साथियो समेत फिरोज़पुर भेजे गए। वहां पुलिस से मुठभेड़ हो गई। गोली चली और थानेदार मारा गया, बाद को जंगल में तेरह

साथियों में से सात गिरफ्तार हो गए। कुछ मारे गए और शेष भाग गए। इन सात में से एक हमारे नायक भी थे।

पाच महीने तक फिरोजपुर मे न्याय-नाटक के बाद आप सातो आदमी तितर-बितर कर दिए गए। किन्तु बाद मे यह कहकर कि मिश्री गाव के पास होनेवाले डाके, कत्ल आदि सभी बातों का उत्तरदायित्व इन्ही लोगों पर है, सबको फासी दे दी गई।

जिनके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व कौड़ी के समान लुटा दिया, और जिनके दुखो से कातर हो, रोती हुई वृद्धा माता की इकलौती गोद को सूनी कर उन्होंने सन्यासी का वेष धारण किया था, उन्ही गांव वालों ने उनके फासी हो जाने पर यह कहकर खुशी मनाई कि सरकार बहादुर ने डाकुओं को फासी पर चढ़ाकर हम पर बड़ा एहसान किया। किन्तु विप्लवियो के जीवन में यह तो एक मामूली-सी बात है। उनका तो उद्देश्य ही 'अनवेप्ट, अनऑनर्ड एण्ड अनसंग' जाना है। संसार उन्हे किस नाम से पुकारता है, इसपर विचार करने का तो अवकाश भी उन्हें नही मिलता और न वे कभी इसकी परवा करते हैं। वे संसार के सामने वाहवाही लेने के विचार से कभी इस मार्ग पर नही आते, वे तो केवल अपने-आपको ही संतुष्ट देखना चाहते हैं।

पंडित जी लाहौर सेण्ट्रल जेल में बन्द थे। पिता ने आकर रोना-पीटना शुरू कर दिया—"बेटा, क्या तुम्हे मेरी इस वृद्धावस्था पर तनिक भी तरस नहीं आता? तुम्हारी मां तुम्हारे विछोह में अभी से पागल हो गई है। मैंने तो सोचा था कि बड़े होकर तुम कुछ सुख पहुचाओगे, किन्तु नही जानता था कि तुम इतने निर्मोही हो। तुमने हमारी तनिक भी सुध न ली। अब हम शेष जीवन किसके सहारे पर व्यतीत करेंगे।"

तपस्वी ने एक लम्बी सांस ली और कहा—"पूज्यवर, इस व्यर्थ के [illegible] से क्या होगा? इस संसार में न कोई किसीका पुत्र है और न कोई किसीका पिता। यह सब मन की भावना मात्र है, अतः इसके लिए व्यर्थ में अपने को दुःखी न बनाएं। रही बात खाने-पीने की, सो जिस सर्वनियन्ता ने हमें पैदा किया है, उसे हर समय, हर स्थान पर अपने सभी पुत्रो का ध्यान है। [illegible] भारतीयों को अपना ही पुत्र समझकर, एक [illegible]"

भाई को आता देखकर आपने कहा—"[illegible]! मैंने कोई पाप नही किया है, और इस प्रकार मरने पर मुझे देशभक्तों के चरणों में स्थान मिलेगा। मैं इसीको अहोभाग्य समझता हूं।"

अन्त में घर वाले फिर भी न माने और [illegible] अपील की, किन्तु उसके निर्णय के पहले ही आप फांसी पर लटका दिए गए।

श्री गन्धासिंह

लाहौर ज़िले के 'कच्चरमन' नामक गांव में आपका जन्म हुआ था। उस समय लोग इन्हें भाई भगतसिंह के नाम से पुकारा करते थे। बाद में सिक्ख धर्म की दीक्षा लेने पर आपका नाम भाई रामसिंह रखा गया, किन्तु प्रसिद्ध नाम आपका भाई गन्धासिंह पड़ा। आप छोटी अवस्था में ही अमेरिका चले गए थे। 1914 और 15 मे अमेरिका की गदर पार्टी के आप एक प्रमुख नेता थे। और अन्त में जब पार्टी की ओर से भारत में आकर प्रचार करने की बात निश्चय हुई तो सबसे पहले आप अपने एक और मित्र को साथ लेकर भारत की ओर चल दिए। आपके भारत आने के कुछ ही दिनों बाद बजबज घाट पर गोली चल गई और बाहर से कलकत्ते का टिकट लेकर आनेवाले यात्रियों पर कड़ा पहरा लगा दिया गया। अमेरिका से भारत आनेवाले यात्रियों को अपने ही देश में उतरना कठिन ही नही, वरन् असंभव-सा हो गया। अत: परिस्थिति को बहुत भयानक रूप धारण करते देख, आप अपने मित्र के साथ झट हांगकांग आ गए और वहां से जो भारतीय कलकत्ते के टिकट पर भारत आने की तैयारी कर रहे थे, उनके टिकट बदलवाकर बम्बई और मद्रास के टिकट लेकर जाने को बाध्य किया। 1914 और 15 मे पंजाब के अन्तर्गत जो भी थोड़ी-बहुत विप्लव की योजना हो सकी थी, वह इन्ही हमारे नायक द्वारा बचाए गए सिक्खों को लेकर ही हुई थी।

हांगकाग से वापस आकर गन्धासिंह पूरी ताकत से इधर-उधर घूमकर विप्लव का प्रचार करने लगे। गर्मी के दिनों में सारे दिन पैदल चलने के बाद भी वे थकते न थे। निराशा तो कभी उनके पास तक नहीं आई। शायद इन सबका कारण यही था कि उन्होंने कार्य-क्षेत्र में आने से पूर्व ही मरने का पाठ भली प्रकार सीख लिया था। वे प्राय: कहा करते थे कि अमेरिका से चलते समय कई रातें मन को यही समझाने में बिताई थी कि वहां जाकर फांसी निश्चय है, और जब बार-बार मना करने और समझाने पर भी मन ने अपना निश्चय नहीं छोड़ा तभी यहां का टिकट खरीदा था। खैर, साराश यह कि वे उत्साह की एक जीती-जागती प्रतिमूर्ति थे और उनमें असीम साहस था।

एक दिन की बात है कि आप अपने दस-पन्द्रह साथियों समेत फिरोज़पुर के 'घलखुर्द' नामक गाव के पास मार्ग मे जा रहे थे कि पुलिस ने आ घेरा। सरकार बहादुर ने उन्हें स्वयं अपने हाथों से पाला था और शायद इसी बेहोशी में थानेदार साहब ने आपके एक साथी को गालियां देते हुए एक तमाचा लगा दिया। घर पर मा-बाप ने कभी एक बात भी न कही थी। अस्तु, युवक इस चाटे को सह न

सका और उसकी आंखों में आंसू आ गए। एक स्वाधीन देश की जलवायु में पला हुआ और स्वाधीनता के लिए घर-बार पर लात मारकर गली-गली पागलो की भांति घूमने वाला आत्माभिमानी भला इस अपमान को कब सहन कर सकता था! देखते-देखते गन्धासिंह की गोली का निशाना बनकर थानेदार साहब ज़मीन पर आ गिरे। साथ ही एक जियातदार (तहसील वसूल करने वाला) भी मारा गया। इस घटना के बाद आपके साथियों के तितर-बितर हो जाने के कारण कुछ आदमियों का जंगल मे फिर पुलिस के साथ सामना हो गया। ये लोग तो मरने की दीक्षा लेकर ही घरो से बाहर हुए थे, इसलिए दोनों ओर से गोली चलने लगी। अन्त मे गोली-बारूद के समाप्त हो जाने पर कुछ लोग तो वही पर मारे गए और बाकी सात मनुष्य पुलिस के हाथ आ गए। न्याय-नाटक में इन सातो को ही फासी का पुरस्कार मिला और 1914 के शीतकाल के दिनो मे वे सातों साथी दूर—बहुत दूर—अपने पिता के पास इस नाटक का हवाला कहने चले गए।

जिस देश पर दीवाने होकर उन्होंने गली-गली की धूल छानी और अन्त में जिसकी वेदी पर अपना सर्वस्व लुटाकर प्राणों तक की आहुति चढ़ा गए उसी देश के रहने वालों ने उनके नाम तो क्या, यहा तक न जाना कि वे कब, कहा, क्यों और किस देश मे विलीन हो गए!

दिन यो ही गुलामी के बसर होते है सारे।
एक आह तुम जैसों के लिए भी नही भरते ॥

हमारे नायक श्री गन्धासिंह को अभी कुछ और दुनिया देखनी थी, अत. इस बार वे पुलिस के हाथ न आए। उन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर फिर वही प्रचार-कार्य आरम्भ कर दिया। इस समय पुलिस पर आपका इतना रौब जम गया था कि गिरफ्तारी का अवसर मिलने पर भी वे लोग आपपर हाथ नही डालते थे।

खन्ना के पास एक गाव में दीवान हो रहा था, वही पर ज्ञानी नत्थासिंह नामक एक मास्टर से आपकी मुलाकात हुई। यह व्यक्ति लुधियाना खालसा हाई स्कूल मे नौकर था। यह गन्धासिंह को अपने साथ लिवा ले गया। मार्ग में एक स्थान पर बहुत-से आदमी खड़े थे। उनके बीच में पहुंचने पर देशद्रोही नत्थासिंह ने आपको पीछे से पकड लिया। इतने मे ही और लोग भी आपपर आ टूटे। अनायास कितने ही लोगो के बीच मे पड जाने के कारण आप कुछ भी न कर सके। उस समय मास्टर ने कहा कि—"अब तुम गिरफ्तार हो गए?" आपको गांव लाया गया और हाथ पीछे बांधकर एक कोठरी मे बन्द कर दिया गया।

जिस वीर का नाम सुनकर पजाब की पुलिस काप उठती थी, जिसकी ओर आख उठाकर देखने का साहस भी कभी किसी को नही हुआ और जिसके आतंक से कितनी ही बार स्वय पुलिस वालों ने उसे हाथ में आता जानकर भी उसपर हाथ नही डाला, वही वीर एक अपने ही भाई के विश्वासघात के कारण एक छोटी-सी

कोठरी मे हाथ बंधे हुए मुह् के बल धूल मे लोट रहा है। आज वह पराया बन्दी है, आज़ाद खिलाड़ी नहीं।

रात-भर इसी प्रकार पडे रहने के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल पुलिस कप्तान ने आकर कोठरी का दरवाज़ा खुलवाया। इस रात के अंधेरे में जेल के अन्दर अपने और साथियो से गिरफ्तारी का बयान करते समय आपने कहा था—"उस रात मेरे हाथ फूलकर जंघा के समान हो गए थे और उस कष्ट के सामने फांसी मुझे बिलकुल आसान जान पड़ती थी।"

आपपर वही, थानेदार के मारने के अपराध मे, अभियोग चलाया गया और फासी की सजा मिली। उस समय जज ने अपने फैसले मे लिखा था कि "जो सात आदमी पहले फासी पर चढ़ाये गए थे वे वास्तविक अपराधी न थे। असल अपराधी तो यह है जिसे हम आज फासी दे रहे है।" बलिहारी है ऐसे न्याय की!

फासी सुनने के बाद तो आपकी खुशी का ठिकाना न रहा। उस समय एक अंग्रेज़ सार्जेण्ट ने अपने साथी से कहा था—"आज हमने गन्धासिंह के दर्शन किए है। वह बडा खुश है और इस प्रकार सिर हिला-हिलाकर बातें करता है, मानो उसपर एक प्रकार का नशा-सा छाया हुआ है।"

8 मार्च, सन् 1916 का दिन था। प्रात.काल के पाच बजे थे। नहाने के लिए पानी लाने वाले ने कहा—"क्या आपको पता है कि आज आपको फांसी दे दी जायेगी?" आपने बिलकुल साधारण तौर पर उत्तर दिया-–"फासी मेरे लिए कोई नई बात नही है। मैं जिस दिन अमेरिका से चला था, उसी दिन फासी लग चुकी थी।"

फासी हो चुकने के बाद एक वार्डर ने कहा था—"मैंने अपनी तीस साल की नौकरी मे कुल 125 आदमियो को अपने ही हाथो फासी पर चढाया। उनमे प्रायः सभी तरह के मनुष्य शामिल है, किन्तु जो साहस, जो हौसला और जो उत्साह मैंने गन्धासिंह मे देखा वह और किसी मे भी न देखा था।" उस समय उनकी बहादुरी से प्रभावित होकर जेल कर्मचारी भी रो पड़े थे।

—लक्ष्मण

श्री करतारसिंह

रणचण्डी के उस परमभक्त बागी करतारसिंह की आयु उस समय 20 वर्ष की भी न होनेपाई थी, जब उन्होंने स्वतन्त्रता देवी की बलिवेदी पर निज रक्ताजलि भेंट कर दी। आंधी की तरह वे एकाएक कहीं से आये, आग भड़काई, सुपुप्त रणचण्डी को जगाने की चेष्टा की, विप्लव यज्ञ रचा, और अन्त मे स्वयं भी उसीमे स्वाहा हो गए। वे क्या थे, किस लोक से एकाएक आ गए थे और फिर झट से किधर चले गए, हम कुछ भी समझ न सके। 19 वर्ष की छोटी अवस्था में ही उन्होंने इतने भारी कार्य कर दिए कि सोचने पर आश्चर्य होता है। इतना साहस, इतना आत्मविश्वास, इतना आत्मत्याग, इतनी तत्परता, इतनी लगन बहुत कम देखने को मिलेगी। भारतवर्ष में वास्तविक विप्लवी कहे जाने वाले बहुत कम व्यक्ति पैदा हुए है। परन्तु उन इने-गिने विप्लवियों में भी श्री करतारसिंह सर्वतोमुखी है। उनकी नस-नस मे विप्लव समा गया था। उनके जीवन का एकमात्र आदर्श, उनकी एकमात्र अभिलाषा, एकमात्र आशा, जो भी था, यही विप्लव था। इसी के लिए वे जिए और अन्त में इसीके लिए वे मर गए।

सन 1896 में आपका जन्म सराबा नामक गाव (ज़िला लुधियाना) में हुआ था। आप माता-पिता के इकलौते पुत्र थे। बड़े लाड़-चाव से पालन-पोषण हो रहा था। अभी बिलकुल छोटी अवस्था थी कि पिता का देहान्त हो गया। परन्तु आपके दादा ने बड़े यत्न से आपको पाला। आपके पिता का नाम सरदार मंगलसिंह था। आपके एक चचा तो संयुक्त प्रान्त में पुलिस सब-इन्स्पेक्टर थे और दूसरे उड़ीसा के मुहकमा जंगलात के किसी ऊंचे पद पर कार्य करते थे। करतारसिंह पहले तो अपने गाव के ही प्राइमरी स्कूल मे पढते रहे, बाद मे लुधियाना के खालसा हाई स्कूल में दाखिल हुए। पढने-लिखने में बहुत तेज नही थे, किन्तु कुछ ऐसे बुरे भी न थे। शरारती बहुत थे। हरएक की जान पर छेडखानी से आफत बनाए रहते। आपको सहपाठी 'अफलातून' कहा करते थे। सभी लोग आपसे बहुत प्यार करते थे। स्कूल मे आपका एक जुदा गुट था। खेलों मे आप अगुआ थे। नेतागीरी के सभी गुण आप मे विद्यमान थे। नवम श्रेणी तक वही पढ़कर फिर अपने चाचा के पास उड़ीसा चले गए। वहा जाकर मैट्रीकुलेशन पास किया, और कालेज के कोर्स के संकीर्ण दायरे से बाहर की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने का सुअवसर मिला। आन्दोलन के दिन थे। उसी वायुमण्डल में रहकर आपके देश तथा स्वातन्त्र्य-प्रेम के भाव और भी प्रबल हो उठे।

अमेरिका जाने की इच्छा हुई। घरवालो ने बहुत हुज्जत नही की। आपको

अमेरिका भेज दिया गया। सन् 1912 में आप 'सान्फ्रासिस्को' बन्दरगाह पर पहुंचे। इमिग्रेशन विभाग वालों ने विशेष पूछताछ के लिए आपको रोक लिया। आफिसर के पूछने पर आपने कहा—यहा पढने के लिए आया हूं।

आफिसर ने कहा—क्या हिन्दुस्तान में पढने का स्थान तुम्हें नही मिला ?

उत्तर दिया—मैं उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए ही कैलीफोर्निया के विश्वविद्यालय मे दाखिल होने के विचार से आया हूं।

"और यदि तुम्हें अमेरिका मे न उतरने दिया जाए तो ?"

इस प्रश्न का उत्तर करतारसिंह ने बहुत सुन्दर दिया। आपने कहा—"तो मैं समझूंगा कि बड़ा भारी अन्याय हुआ। विद्यार्थियों के रास्ते मे ऐसी अडचनें डालने से तो संसार की उन्नति रुक जायेगी। कौन जानता है कि मैं ही यहां शिक्षा पाकर संसार की भलाई का बड़ा भारी कार्य करने मे समर्थ न हो सकू ! और उतरने की आज्ञा न मिलने पर उससे वंचित नही रह जायेगा ?"

आफिसर महोदय ने इस उत्तर से प्रभावित होकर उतर जाने की आज्ञा दे दी।

स्वतन्त्र देश मे जाकर कदम-कदम पर आपके सुकोमल हृदय पर आघात लगने लगे। 'डैम हिन्दू' और 'ब्लैक कुली' आदि शब्द उन उन्मत्त गोरे अमेरिकनों के मुह से सुनते ही वे पागल-से हो उठे। उन्हें पद-पद पर अपमान अखरने लगा। घर याद आने पर पराधीन, जंजीरों से जकडा हुआ, अपमानित, लुटा हुआ, निःशक्त भारत आंखो के सामने आ जाता। वह कोमल हृदय धीरे-धीरे सख्त होने लगा और देश की स्वतन्त्रता के लिए जीवन अर्पण करने का निश्चय धीरे-धीरे दृढ होता गया। उस समय के उस भावुक हृदय के वेग को हम क्या समझेंगे ?

अब वे चैन से बैठ सकते, यह असम्भव था। न भाई, अब चुपचाप शान्ति से काम न चलेगा। देश कैसे स्वतन्त्र हो, यही एक मुख्य प्रश्न उनके सामने आ गया और अधिक सोचे बिना ही उन्होंने वही भारतीय मजदूरों का संगठन शुरू कर दिया। उनमे स्वातन्त्र्य प्रेम का भाव जागृत करने लगे। हर एक के पास घण्टों बैठकर समझाना कि इस अपमानित पराधीन जीवन से तो मृत्यु हज़ार दरजे अच्छी है। कार्य आरम्भ होने पर कुछ और लोग भी उनके साथ आ मिले और मई, 1912 मे इन लोगों की एक सभा हुई। कोई नौ सज्जन रहे होंगे। सबने तन-मन-धन देश की स्वतन्त्रता पर निछावर करने की प्रतिज्ञा की। इधर इन्ही दिनों पंजाब के निर्वासित देशभक्त सरदार भगवानसिंह वही पहुंच गए। धड़ाधड सभाएं होने लगी। उपदेश होने लगे। कार्य होता रहा। क्षेत्र तैयार होता गया।

फिर अपने सम्वाद-पत्र की आवश्यकता अनुभव हुई। 'गदर' नामक पत्र निकाला। उसका पहला अंक पहली नवम्बर, 1913 को प्रकाशित हुआ था। उस पत्र के सम्पादकीय विभाग में हमारे नायक करतारसिंह भी थे। आप जोरों से

लिखा करते। इसे सम्पादकगण स्वयं ही हैंड प्रेस पर छापते भी थे। करतारसिंह मतवाले विद्रोही युवक थे। हैंड प्रेस चलाते-चलाते थक जाने पर वे पंजाबी गीत गाया करते—

सेवा देश दी जिंदड़ीए बड़ी औखी,
गल्लां करनीआं ढेर सुखल्लियां ने।
जिन्हां इस सेवा विच पैर पाया,
उन्हां लख मुसीबता झल्लियां ने।।

अर्थात्—'अरे दिल, देश की सेवा बड़ी मुश्किल है, बातें बनाना बड़ा आसान है। जो लोग इस सेवा मार्ग पर अग्रसर हुए, उन्हें लाखों विपत्तियां झेलनी पड़ीं।'

करतारसिंह उस समय जिस चाव से मेहनत करते थे, कठिन परिश्रम करने पर भी वे जिस तरह हंसते-हंसाते रहते थे, उससे सभी का उत्साह दूना हो जाता था।

भारत को किस तरह स्वतन्त्र करवाना होगा, यह और किसीको पता हो अथवा न हो, किसीने इसके सोचने मे मगजपच्ची की हो अथवा नही, पर हमारे नायक ने तो खूब सोच रखा था। इसीसे तो उसी बीच में आप न्यूयार्क की हवाई जहाज़ों की कम्पनी में भरती हुए और वहां दत्तचित्त हो हवाई जहाज चलाना, मरम्मत करना और बनाना सीखने लगे। शीघ्र ही इस कला मे वे दक्ष हो गए। सितम्बर, 1914 में कामागाटामारू जहाज़ को नृशंस गोरेशाही के हाथों अकथनीय कष्ट सहन करने के बाद लौटना पड़ा था, तभी हमारे नायक करतारसिंह, कोई एक विप्लवी मिस्टर गुप्ता तथा एक अमेरिकन अनार्किस्ट 'जैक' को साथ लेकर हवाई जहाज पर जापान आए थे और 'कोव' में बाबा गुरुदत्तसिंह जी से मिलकर सब बातचीत कर गए थे।

युगान्तर आश्रम सान्फ्रासिस्को के गदर प्रेस मे 'गदर' तथा उसके अतिरिक्त 'गदर दी गूंज' इत्यादि अनेक पुस्तकें छपती और बटती गईं। प्रचार ज़ोरों से होता गया। जोश बढा। फरवरी, 1914 में ही स्टॉकटन की सार्वजनिक सभा में तिरगा झंडा फहराया गया, तभी स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के नाम पर शपथें ली गईं। उस सभा के प्रभावशाली वक्ताओं में तरुण करतार भी थे। घोर परिश्रम तथा गाढे पसीने की कमाई को देश की स्वतंत्रता के लिए खर्च करने का निश्चय सभी श्रोताओं ने घोषित कर दिया। ऐसे ही दिन बीत रहे थे, एकाएक यूरोप में महाभारत छिड़ने का समाचार मिला। अब क्या था, आनन्द और उत्साह की सीमा न रही। एकाएक सभी गाने लगे—

चलो चलिए देश नूं युद्ध करन
एहो आखिरी बचन ते फर्मान हो गए।।

अर्थात्—'चलो, देश को युद्ध करने चलें, यही है आखिरी वचन और फर्मान।'

लोभ से नही, अपना सर्वस्व लगाकर ही डाके डालने चले थे। हम अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने की तैयारी कर रहे है। शस्त्र आदि खरीदने के लिए रुपया चाहिए। वह कहां से लें ? मा, उसी महान कार्य के लिए आज यह नीच कर्म करने पर हम बाध्य हुए है।"

उस समय बडा दर्दनाक दृश्य था। मा ने फिर कहा—"इस लड़की की शादी करनी है। उसके लिए रुपया चाहिए। कुछ देते जाओ तो बेहतर हो।" सभी धन उसके सामने रख दिया गया और कहा गया—जितना चाहिए ले लीजिए। कुछ धन लेकर शेष सभी उसने स्वयं बड़े चाव से करतार की भोली में डाल दिया और आशीर्वाद दिया कि जाओ बेटा, तुम्हे सफलता प्राप्त हो !

डकैती जैसे भीषण कार्य मे सम्मिलित होने पर भी करतारसिंह का हृदय कितना भावुक, कितना पवित्र, कितना महान था—यह उक्त घटना से स्पष्ट है।

बंगाल दल के संसर्ग मे आने से पहले ही आपने शस्त्रो के लिए लाहौर छावनी की मेगज़ीन पर हमला करने की तैयारी कर ली थी। एक दिन ट्रेन मे जाते हुए एक फौजी सिपाही से भेंट हो गई। वह मेगज़ीन का इंचार्ज था। उसने चाबिया दे देने का वादा किया। 25 नवम्बर को आप कुछेक दु.साहसी साथियो को लेकर वहां जा धमके, परन्तु एकाध दिन पहले उपरोक्त सिपाही के किसी अन्य स्थान को तबादला हो जाने से सारा कार्य बिगड गया, परन्तु दिल छोड़ना, घबरा जाना ऐसे विप्लवियो के चरित्र में नही होता।

फरवरी में विद्रोह की तैयारी थी। पहले सप्ताह आप पिंगले तथा दो-एक अन्य साथियों सहित आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ तथा मेरठ आदि में गए और विद्रोह के लिए फौजों से जोड़-तोड़ कर आए।

आखिर वह दिन भी निकट आने लगा, जिसका विचार आते ही इन लोगों के हृदय हर्ष, चाव, भय आदि अनेक भावों से धड़कने लगते थे। 21 फरवरी, 1915 समस्त भारत में विद्रोह मचाने का दिन निश्चित हुआ था। तैयारी इसी विचार से हो रही थी। परन्तु ठीक उसी समय उनके विशाल आशा-तरु की जड़ में बैठा एक चूहा उसे काट रहा था। तने के एकदम खोखले हो जाने पर आधी के एक थपेड़े से वह जमीन पर गिर जाएगा, यह वे नही जानते थे। चार-पाच रोज़ पहले सन्देह हो गया। कृपाल की कृपा से सब गोवर हो जाएगा, इसी भय से करतारसिंह ने रासबिहारी से 21 के स्थान पर 19 फरवरी को ही विद्रोह खड़ा कर देने को कहा था। वैसा ही हो जाने पर भी कृपालसिंह को भेद मालूम हो गया। उस विराट विप्लवायोजन में उस एक नर-पिशाच का अस्तित्व कितना भयानक परिणाम का कारण हुआ ! रासबिहारी और करतारसिंह भी कोई यथोचित प्रबन्ध कर अपना भेद न छिपा सके, इसका कारण भारत के दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या हो सकता है !

पागल करतार 50-60 व्यक्ति लेकर पूर्व निश्चय के अनुसार 19 फरवरी को

फिरोज़पुर छावनी मे जा पहुचे। आज अभी कुछेक घण्टे के बाद रणचण्डी का ताण्डव नृत्य प्रारम्भ हो जाएगा! करतारसिंह अपने तिरंगे झण्डे को अभी-अभी भारत भूमि मे फहरा देंगे! आज ही और अभी गुरु गोविन्द के अनुयायी करतार तथा उनके सहकारियो मे बढ-चढ़ के मरने-मारने की उत्कण्ठा पैदा हो जाएगी!

करतारसिंह छावनी में घुस गए। अपने साथी फौजी हवलदार से मिले। विद्रोह की बात कही। परन्तु कृपाल ने तो पहले ही सब कुछ बिगाड रखा था। भारतीय सैनिक निशस्त्र कर दिए गए थे। धडाधड़ गिरफ्तारियां हो रही थीं। हवलदार ने साफ इन्कार कर दिया। करतारसिंह का आग्रह व्यर्थ हुआ। निराश, हताश लौट आए। सब प्रयत्न, सब परिश्रम एकदम व्यर्थ हो गया। पंजाब मे गिरफ्तारियो का बाज़ार गर्म हो गया। विपत्ति मे पड़ते ही अनेक विप्लवी अक्लमन्द बनने लगे। उन्हें अपने पुराने आदर्श में भ्रम दीखने लगा। आज वह पकड गया, कल वह फूट गया। ऐसी ही दशा मे रासू बाबू हताश होकर मुर्दे की नाईं लाहौर के एक मकान मे पड़े थे। करतारसिंह भी आकर एक और चारपाई पर दूसरी ओर मुह करके लेट गए। वे एक-दूसरे से कुछ बोले नही, परन्तु चुप ही चुप में एक-दूसरे के हृदय मे वे घुसकर सब समझ गए थे। उनकी उस समय की वेदना का अनुमान हम लोग क्या लगा सकेंगे!

दरे तदबीर पर सर फोड़ना शेवा रहा अपना।
वसीले हाथ ही आए न किस्मत आजमाई के॥

निश्चय हुआ, सभी पश्चिमी सीमा से उस पार लांघकर विदेशों मे चले जाएं। रासू बाबू कलमा पढने लगे। परन्तु उन्होने एकाएक निश्चय बदल डाला। वे बनारस चले गए। परन्तु करतारसिंह पश्चिम की ओर चल दिए। वे तीन व्यक्ति थे—श्री करतारसिंह, श्री जगतसिंह तथा श्री हरनामसिंह टुराडा, ब्रिटिश भारत की सीमा से पार निकल गए। शुष्क पहाड में जाते-जाते एक रमणीक स्थान आया। छोटी-सी सुन्दर नदी बह रही थी। उसीके किनारे बैठ गए। चने खोलकर चबाने लगे। कुछ जल-पान हो चुकने के बाद करतारसिंह गाने लगे—

"बनी सिर शेरा दे, की जाणा भज्ज के।"

भावुक करतार कवि भी थे। अमेरिका मे उन्होंने यह कविता लिखी थी। मतलब है कि शेरों के सर पर आ बनी है, अब भागकर क्या जाएंगे! सुरीली आवाज मे यही एक पंक्ति गाई थी। झट मे रुक गए और बोले—"क्यो जी जगतसिंह, क्या यह कविता दूसरो के लिए ही लिखी गई थी? क्या हमपर इसका कुछ भी दायित्व नहीं? आज हमारे साथी विपत्ति में फंसे पड़े हैं और हम अपना सर छुपाने की चिन्ता में व्यग्र हो रहे हैं?" एक-दूसरे की ओर देखा। निश्चय हुआ, भारत लौटकर उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न किया जाए। फिर आगे नहीं गए, वहीं से लौट आए। जानते थे, मृत्यु मुह फाड़े उनकी प्रतीक्षा मे खड़ी है। परन्तु इससे क्या होना था!

देखने वाले बताते हैं, जज के इन शब्दों पर उसने एक मस्तानी अदा से केवल इतना कहा था—"फांसी ही लगा दोगे न, और क्या ? हम उससे डरते नहीं हैं।"

उस दिन कोर्ट उठ गई। अगले दिन फिर करतारसिंह का बयान शुरू हुआ। जज लोगों की पहले दिन कुछ ऐसी धारणा थी कि करतारसिंह ऐसा बयान भाई परमानन्द के इशारे पर दे रहा है। परन्तु वे वैप्लविक तरुण-हृदय के गाम्भीर्य को नहीं समझ पाए थे। करतारसिंह का बयान ज्यादा जोरदार, ज्यादा जोशीला तथा पहले दिन की तरह स्वीकृतिसूचक था।

अन्त में आपने कहा—"मेरे अपराध के लिए मुझे या तो आजीवन कारागार का दण्ड मिलेगा, या फांसी। परन्तु मैं तो फांसी को ही श्रेय दूंगा। ताकि शीघ्र ही फिर जन्म लेकर, भारत स्वतंत्र न होगा तब तक, ऐसे ही बार-बार जन्म धारण कर फांसी पर लटकता रहूं। यही अभिलाषा है। और यदि पुनर्जन्म में स्त्री बना तो भी अपने ऐसे विद्रोही पुत्रों को जन्म दूंगा।"

आपकी दृढता ने जज लोगों को भी प्रभावित किया, परन्तु उन्होंने एक उदार शत्रु की तरह आपकी वीरता को वीरता न कहकर ढिठाई के शब्द से याद किया। जज महोदय लिखते है—

"ही इज़ ए यंग मैन, नो डाउट, बट ही इज़ सरटेनली वन आफ दि वर्स्ट ऑफ दीज़ कान्सपीरेटर्स, एण्ड इज़ ए थॉरोली कैल्लस सकौण्ड्रल, प्राउड आफ हिज़ एक्सप्लाइट्स, टु हूम नो मर्सी ह्वाट एवर कैन बी ऑर शुड बी शोन।"

वीर और उदार शत्रु पराजित सैनिक से ऐसा व्यवहार नहीं किया करते। परन्तु यहां ऐसा ही हुआ। करतारसिंह को केवल गालियां ही मिली हों, सो ही नहीं, मृत्युदण्ड भी मिला। उन्हींको ढूंढते हुए पुलिसवालों के हाथ से पानी पीकर कई बार चम्पत हो जाने वाले वीर करतार आज विद्रोह-बगावत के अपराध में मृत्यु-दण्ड के भागी बने। आपने वीरतापूर्वक मुस्कराते हुए जज से कहा—"थैंक यू।"

करतार, तुम्हारे जीवन में कौन ऐसी विशेष घटना हो गई थी, जिससे तुम मृत्यु-देवी के ऐसे उपासक बन गये ? करतारसिंह फांसी की कोठरी में बन्द है। दादा आकर पूछते है—करतारसिंह, किन के लिए मर रहे हो? जो तुम्हें गालियां देते हैं? तुम्हारे मरने से देश का कुछ लाभ हो, सो भी तो नहीं दीखता।

करतारसिंह ने धीरे से पूछा—"पितामह, अमुक व्यक्ति कहां है ?"

"प्लेग से मर गया !"

"अमुक कहां है ?"

"हैज़े से मर गया।"

"तो क्या आप चाहते थे कि करतारसिंह भी विस्तर पर महीनों पड़ा रहकर दर्द से कराहता हुआ किसी रोग से मरता ! क्या उस मृत्यु से यह मृत्यु अच्छी नहीं ?"

दादा चुप हो गए।

आज दुनिया में फिर प्रश्न उठता है, उनके मरने का लाभ क्या हुआ? वे किस लिए मरे? उत्तर स्पष्ट है। मरने के लिए मरे। उनका आदर्श ही देशसेवा में मरना था, इससे अधिक वे कुछ नहीं चाहते थे। मरना भी अज्ञात रहकर चाहते थे। उनका आदर्श था—अनसंग, अनऑनर्ड एण्ड अनवेप्ट।

चमनज़ारे-मुहब्बत में उसीने बागवानी की,
कि जिसने अपनी मेहनत को ही मेहनत का समर जाना।
नहीं होता है मोहताजे नुमायश फ़ैज़ शबनम का,
अंधेरी रात में मोती लुटा जाती है गुलशन में।।

डेढ साल तक मुकदमा चला। सम्भवतः वह 1916 का नवम्बर ही था, जबकि उन्हें फांसी पर लटका दिया गया। वे उस दिन भी सदा की तरह प्रसन्न थे। उसका वज़न 10 पाउण्ड बढ़ गया था। 'भारत माता की जय' कहते हुए वे फांसी के तख्ते पर चढ़ गये।

—बलवन्त

श्री वी० जी० पिंगले

फटे हुए माता के आंचल को बढ़कर सीने वाले।
तुझे बधाई है ओ पागल मरकर भी जीने वाले॥

पूना के पहाड़ी प्रदेश में श्रीगणेश पिंगले के यहां जन्म पाकर, अभी उनका बचपन बीतने भी न पाया था कि गुलामी के थपेड़े से वह भावुक हृदय कराह उठा। घर वालों ने इंजीनियरिंग की शिक्षा पाने के लिए उन्हें अमेरिका भेज दिया। बस, वहीं पर उन्होंने विप्लव दल की दीक्षा ली और फिर भारत को वापस आ गए। उस बेचैन हृदय ने अब एक क्षण भी बेकार खोना गवारा न किया। भारत में आने पर घर न जाकर, पिंगले सीधे बंगाल में पहुंचे और वहां के क्रान्तिकारियों को पंजाब के बलवे की सूचना देकर उनसे सम्बन्ध स्थापित किया। पंजाब तथा बंगाल के दलों के मिल जाने पर कार्य ज़ोरों से होने लगा। अधिक से अधिक तादाद में बम बनाने की व्यवस्था की गई और संगठन को काफी विस्तार दिया गया।

रासबिहारी के दल से मिलकर पिंगले काशी पहुंचे। दो-तीन दिन वहां रहने के बाद कुछ लोगों ने उनसे पंजाब जाने का अनुरोध किया। अस्तु अधिक से अधिक संख्या में बम भेजने को कहकर पिंगले पंजाब पहुंचे और एक ही सप्ताह में वहां की सारी व्यवस्था जानकर फिर काशी वापस आ गए। इस बार वे रासबिहारी को पंजाब ले जाने के लिए ही आए थे, किन्तु कारणवश उनके स्थान पर शचीन्द्र नाथ सान्याल को ही जाना पड़ा। एक साधारण-से हिन्दुस्तानी वेश में शचीन्द्र को साथ लेकर पिंगले अमृतसर के एक गुरुद्वारे में पहुंचे। इन्हें पंजाबी बोलने का अच्छा अभ्यास था। अस्तु, कुछ दिन वहां ठहरकर संगठन को और भी दृढ़ बनाया गया। उस समय पिंगले तथा करतारसिंह ही पंजाब के आन्दोलन की जान थे। सब ठीक हो जाने पर रासबिहारी भी पंजाब आ गए। विप्लव का आयोजन ज़ोरों के साथ होने लगा। शचीन्द्र बाबू को बनारस का भार सौंपा गया। 21 फरवरी विप्लव का दिन था। किन्तु अभी तो भारत को कुछ और ठोकरें खानी थी। अस्तु लीलामय की इच्छा के विरुद्ध यह काम न हो सका, अर्थात् पुलिस के एक भेदिये ने सारे परिश्रम पर पानी फेर दिया।

गिरफ्तारियां शुरू हो जाने पर सारा दल छिन्न-भिन्न हो गया। आज जो जीवन-मरण के साथी थे, कल वे ही जेल में तिल-तिल कर प्राण देने लगे।

रासबिहारी के साथ बनारस वापस जाते समय पिंगले विप्लव का प्रचार करने के लिए फिर मेरठ छावनी में घुस पड़े। एक मुसलमान हवलदार ने उन्हें बहुत कुछ आशा दिलाई और उन्हीं के साथ बनारस आया। रासबिहारी ने पिंगले को

ऐसे समय में सिपाहियों के बीच जाने से बहुतेरा मना किया, किन्तु वे फिर भी निराश न हुए और अन्त में उन्हें भी अनुमति देनी पड़ी। पिंगले को दस बड़े-बड़े बम देकर रवाना किया गया।

रासबिहारी का अनुमान सत्य निकला। हवलदार ने उन्हे मेरठ छावनी में ही गिरफ्तार करवा दिया। रौलट रिपोर्ट मे पिंगले के पास वाले बॉम्स के बारे मे लिखा है—

"वन बॉम्ब वाज़ सफीशेंट टु एनीहीलेट हाफ ए रेजीमेंट।"

रासबिहारी ने बाद मे अपनी डायरी के कुछ पृष्ठ देते हुए लिखा था—"यदि मैं जान पाता कि पिंगले अब मुझे फिर न मिल सकेगा तो उसके लाख आग्रह करने पर भी उसे अपने पास से जाने न देता। उस सुदृढ़ गोरे शरीर वाले वीर के अभिमान-भरे ये शब्द कि 'मैं एक वीर सैनिक की हैसियत से केवल कार्य करना जानता हूं,' अब भी कानो मे गूंजते रहते हैं और उसकी तीव्र बुद्धि का परिचय देने वाली वे बड़ी-बड़ी आखें भुलाने पर भी नही भूलती।"

अदालत से उन्हें फांसी की सज़ा मिली। 16 नवम्बर का दिन था। प्रातःकाल और साथियों के साथ लाकर उन्हें फासी के तख्ते के पास खड़ा किया गया। पूछा—"कुछ कहना चाहते हो ?"

पिंगले ने कहा—"दो मिनट की छुट्टी भगवान से प्रार्थना करने के लिए मिलनी चाहिए।"

हथकड़ी खोल दी गई और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—

"भगवान तुम हमारे हृदयों को जानते हो। जिस पवित्र कार्य के लिए आज हम जीवन की बलि चढ़ा रहे है, उसकी रक्षा का भार तुमपर है। भारत स्वाधीन हो, यही एक कामना है।"

उसके बाद स्वय ही फासी की रस्सी गले में डाल ली और तख्ता खिचते ही, पहले ही झटके मे उनके प्राणपखेरू उड़ गए।

—वीरेन्द्र

श्री जगतसिंह

आपके जन्म, निवास-स्थान आदि का पता तो लग न सका, हां इतना अवश्य मालूम है कि आए-दिन बहुत-से सिक्खों को अमेरिका जाते देख आप भी वहीं चले गए थे और गदर की बात छिड़ने पर देश के स्वाधीनता-समर मे दो-दो हाथ करने की लालसा से फिर वापस आ गए थे। इनका शरीर बड़ा सुदृढ तथा बलिष्ठ था और सिक्खों में भी इनके समान दैत्याकार शरीर वाला और कोई न था।

उस दिन कृपाल की कृपा से विप्लव का सारा प्रयास विफल हो जाने पर एक बार भाग्य-परीक्षा के तौर पर फिर से कार्य आरम्भ किया गया। रासविहारी के सब साथी तो पकड़े जा चुके थे। पुलिस का आतंक अभी उसी भांति जारी था। प्रत्येक पल पर विपत्ति की संभावना थी। अस्तु, किसी काम से जगतसिंह को दो और साथियों के साथ कही बाहर रवाना किया गया।

तीन सिक्खो को तागे पर जाते देख पुलिस ने आ घेरा और थाने में चलने को मजबूर करने लगे। वे वीर जानते थे कि थाने में जाना मौत के मुंह में जाना है और वहा जाकर नाम-धाम का ठीक-ठीक पता वे न दे सकेंगे। अत: अन्तिम बार भाग्य-परीक्षा करने का निश्चय कर इन तीनों ने ही गोली चलाना शुरू कर दिया।

कुछ देर तक गोली चलने के बाद इनमें से एक तो निकल गया और एक पुलिस के हाथ आ गया। तीसरे व्यक्ति जगतसिंह जिस समय पुलिस के हाथ से बचकर एक पाइप पर पानी पीने के बाद हाथ पोंछ रहे थे तो पीछे से एक इनसे भी अधिक शक्तिशाली मुसलमान ने आकर इनके दोनों पैर इस मजबूती से पकड़ लिए कि ये फिर वहा से हिल न सके।

ज़मीन पर गिरते ही इन्हे भी गिरफ्तार कर लिया गया। और लोगों के साथ अभियोग चलने पर इन्हें भी वही फासी की आज्ञा हुई और इस प्रकार ये भी अपना पार्ट पूरा कर विप्लव-नाटक के एक और दृश्य को समाप्त कर गए।

—सुरेन्द्र

श्री बलवन्तसिंह

ये बड़े ईश्वरभक्त थे। धर्मनिष्ठा के कारण उन्हें सिक्खों में पुरोहित बना दिया गया था। शान्ति के परम उपासक बलवन्त का स्वभाव बड़ा मृदुल था। वे सुमधुर भाषी थे। पहले-पहल वे ईश्वरोपासना की ओर लगे। फिर लोगों को उस ओर लाने की चेष्टा प्रारम्भ की। बाद मे लोगों के कष्ट दूर करने के प्रयास में धीरे-धीरे गौरांग महाप्रभुओं से मुठभेड़ होती गई और अन्त में फासी पर मुस्कराते हुए आपने प्राण त्याग दिए।

श्री बलवन्तसिंह का जन्म गांव खुर्दपुर जिला जालंधर मे पहली आश्विन संवत् 1939 विक्रमी शुक्रवार को हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार बुद्धसिंह था। परिवार बड़ा धनाढ्य था। पिता को धन के अतिरिक्त स्वभाव तथा अन्य गुणों के कारण सभी मान तथा आदर की दृष्टि से देखते थे। आपको होश संभालते ही आदमपुर के मिडिल स्कूल में शिक्षा के लिए दाखिल करवा दिया गया। विद्यार्थी जीवन मे ही आपका विवाह हो गया। परन्तु विवाह के बाद शीघ्र ही धर्मपत्नी की मृत्यु हो गई। मिडिल पास किए बिना ही स्कूल छोड़कर वे फौज में जा भरती हुए। पल्टन में आपका सन्त कर्मसिंह जी से संसर्ग हुआ। उनकी संगति से आपका ईश्वर भजन की ओर भुकाव हो गया। दस साल ज्यों-त्यों नौकरी की, फिर एकाएक नौकरी छोड़ अपने गाव मे रहकर ईश्वरोपासना शुरू कर दी। पल्टन की नौकरी में ही आपका दूसरा विवाह भी हुआ था। गांव के पास एक गुफा थी। उसीमे वन्द रहकर भगवद्भजन में तल्लीन रहने लगे। ग्यारह महीने वहीं रहने के बाद बाहर आते ही सन् 1905 मे कैनेडा जाने का निश्चय कर उधर ही प्रस्थान कर दिया।

कैनेडा में जाकर आपने अपने दूसरे साथी श्री भागसिंह जी से, जिन्हें एक देश-द्रोही ने बाद में गोली मार दी थी, मिलकर गुरुद्वारा बनाने का कार्य आरम्भ किया। वैंकोवर में ही उनके प्रयत्न से अमेरिका का सबसे पहला गुरुद्वारा स्थापित हुआ। उस समय वहा गए हुए भारतवासियों में कोई संगठन न था। उन्हे गोरे लोग तंग किया करते थे, परन्तु हमारे नायक वहां गए तो उन्होंने इन सब त्रुटियों को पूरा करने का भरसक प्रयत्न किया।

उस समय वहां के प्रवासी हिन्दुओं तथा सिक्खों को मृतक संस्कार करने में बड़ी विपत्ति होती। मुर्दे जलाने की उन्हे आज्ञा न थी। ऐसी अवस्था में बेचारे उन लोगों को अनेकानेक कष्ट सहन करने पड़ते। कई बार उन्हें वर्षा में, वर्फ में, शव को जंगल में ले जाकर, कुछ लकड़िया इकट्ठी कर, तेल डाल, आग लगाकर

भागना पड़ता। ऐसी अवस्था में भी कैनेडियन लोगों की गोली का निशाना बनने का डर रहता। श्री बलवन्तसिंह जी ने यह असुविधा दूर करने का प्रबन्ध किया। कुछ ज़मीन खरीद ली। दाह-संस्कार करने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली। गुरुद्वारे मे भारतीय मज़दूरों का संगठन भी करने लगे। उनमें सच्चरित्रता तथा ईश्वरोपासना का प्रचार किया करते। गुरुद्वारा बड़े प्रयत्न से बन पाया था, उन सबमे आपका परिश्रम ही सबसे अधिक था, अतः सबने मिलकर आपको ही ग्रन्थी बनाना निश्चित किया। पहले तो आपने कुछ इन्कार किया, परन्तु बाद में स्वीकार कर लिया।

सिक्ख लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट तथा परिश्रमी होते हैं। उनके कैनेडा में जाने से गोरे मज़दूरो की कद्र कम हो गई। उधर अंग्रेज़ मज़दूरों से उनका वेतन भी कही कम होता। उनके पहले दल के पहुंचते ही गोरे मज़दूरो ने दंगा-फ़िसाद शुरू कर दिया था। परन्तु योद्धा वीर सिक्ख इन बातों से डरने वाले नही थे। इससे गोरे और भी चिढ उठे। और उधर गुरुद्वारा बनने से इनका संगठन बढने लगा। नवीन आगन्तुको को हर प्रकार की सुविधा होने लगी। यह सब देखकर यहां की गोरी सरकार ने उनको निकालने के लिए यत्किंचित उपाय ढूढने शुरू किए। इमिग्रेशन विभाग वालों ने भारतीय मजदूरों को बहुत कुछ फुसलाकर होण्डुरास नामक द्वीप मे चले जाने पर राजी करने का प्रयत्न किया। उस द्वीप की बहुत तारीफ़ की गई। परन्तु भाई बलवन्तसिंह जी खूब समझते थे कि यह सब धोखे की टट्टी है। आपने अपने किसी विश्वस्त सज्जन को वह स्थान देख आने के लिए भेजा। उन सज्जन का नाम था श्री नागरसिंह। उन्हें वहां इमिग्रेशन विभाग वालों ने भारत मे पांच मुरब्बे ज़मीन और पाच हज़ार डालर देनेका लोभ देकर इस बात पर राज़ी करना चाहा कि वह भारतवासियों को होण्डुरासमेंआने पर राज़ी कर दें। उन्होंने आते ही सब भेद खोल दिया। इमिग्रेशन विभाग वाले भी खुल खेले। अब खुल्लम-खुल्ला युद्ध छिड़ गया। इमिग्रेशन विभाग ने औचित्यानौचित्य का विचार छोड दिया। ज्यों-ज्यों मामला बढ़ा त्यों-त्यों श्री बलवन्तसिंह जी भी आगे बढते गये।

प्रवासी भारतवासियों की इच्छा थी कि वे लोग भारत लौटकर अपने परिवारों को साथ ले जा सकें। बहुत दिनो तक खींचातानी हुई। आखिर एक सलाह सोची गई। श्री बलवन्तसिंह, श्री भागसिंह तथा भाई सुन्दरसिंह जी को भारत लौटकर अपने परिवार लाने के लिए भेजने का प्रस्ताव हुआ। वे तीनों सज्जन भारत को लौट आये।

1911 में वे फिर सपरिवार रवाना हुए। हांगकाग पहुंचकर टिकट न मिलने के कारण रुक जाना पड़ा। वही पड़े रहकर वे वैंकोवर-गुरुद्वारा वालों से पत्र-व्यवहार द्वारा सलाह करते रहे। आखिर तीनों सज्जन चल दिये। श्री सुन्दरसिंह जी तो गये वैंकोवर को, तथा शेष दोनों सज्जन तीनों परिवारों सहित

सान्फ्रांसिसको रवाना हुए। भाईसुन्दरसिंहतो वेंकोवरपहुंच गये, परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका भी तो आखिर गोरों का देश था और इधर तो वे ही गुलाम भारतवासी थे, परिवारों सहित उन दोनों सज्जनों को वहां उतरने की आज्ञा न मिली। वे फिर हांगकाग लौट आये। फिर बहुत दिन बाद बड़े यत्न से परिवारों के लिए वेंकोवर के टिकट मिले। वेंकोवर मे उन दोनों सज्जनों को तो उतरने की आज्ञा मिल गई, परिवारों को उतरने की आज्ञा न मिली। बड़ा झंझट बढा। आखिर परिवारों को उतने दिनों तक उतरने की आज्ञा मिली जितने दिनों मे आशा की जा सकती थी कि इमिग्रेशन विभाग के केन्द्रीय कार्यालय ओटावा से अन्तिम आज्ञा आ जायेगी। परिवार उतरे तो सही, पर जमानत पर। जमानत की अवधि पूरी हो जाने के दो दिन बाद इमिग्रेशन विभाग वाले परिवारों को लेने के लिए आये परन्तु सिख लोग झगड़े के लिए तैयार हो गए। अफसर लोग जरा गरम हुए, परन्तु वीर योद्धाओं की लाल आंखें देख, अपना-सा मुंह लेकर लौट गये। लाल आंखों के पीछे कौन-सा बल था, कौन-सी दृढ़ता थी और कौन-सा निश्चय था जिससे कैनेडा की राजशक्ति और उनका इमिग्रेशन विभाग थर-थर कांप उठे, और उन परिवारों को वहीं रहने दिया गया—यह बातें आज गुलाम भारतवासी नहीं समझ सकते। उनकी कूप-मण्डूकता, उनका संकीर्ण दृष्टिकोण नहीं समझ सकता कि राष्ट्रों को बनाने मे कैसे समय, कैसी घड़ियां उपस्थित हुआ करती हैं। स्वतंत्र भारत अपने स्वातन्त्र्य-संग्राम की इन अद्वितीय घटनाओं को याद किया करेगा। उस समय के इतिहास-लेखक ही इन सब बातों को खूब विस्तार से और वास्तविक रूप में लिख सकने का सुअवसर पा सकेंगे। तब दफा 124-अ आदि विकराल दानव गला दबाये, आंखें निकाले उनकी सांस बंद नहीं किये रहा करेंगे। वे परिवार तो वहीं रह गये, परन्तु शेष भारतीयों के परिवार लाने की समस्या वैसे की वैसी खडी रही। दो साल तक निरन्तर झगडा किया, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। आखिर तय पाया कि इंगलैंड की सरकार तथा जनता और भारत सरकार तथा जनता के सामने अपनी मांगें रखी जावें और उनकी सहायता से इस उलझन को सुलझाया जाए।

एक डेपूटेशन बनाया गया जो इंगलैंड भी गया और भारतवर्ष भी। उसके तीन सदस्यों में एक हमारे नायक श्री बलवन्तसिंह भी थे। इंगलैंड गए। सभी उच्चाधिकारियों से मिले। कहा गया—"मामला भारतसरकारद्वारा यहा पहुंचना चाहिए।" निराश हो भारत में आए। आन्दोलन शुरू किया। उस समय प्रमुख नेता लाला लाजपतराय जी ने भी सडा-सा उत्तर देकर उनसे पीछा छुडा लिया था। फिर क्या था, कुछेक सज्जनों की सहायता मिली। सार्वजनिक सभाएं की गईं। क्रोध था, आवेश था, घायल राष्ट्रीय भाव था, विवशता थी, और थी घोर निराशा। जले दिलों से जो कुछ निकला, कहा, और फिर! सर माइकेल ओडायर अपने

'इण्डिया एज़ आई न्यू इट' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

"ऐट दिस स्टेज आई सेंट ए वार्निंग टु दि डेलिगेट्स दैट इफ दिस कंटीन्यूड आई वुड बी कम्पेल्ड टु टेक सीरियस एक्शन···दि डेलीगेट्स आन दिस आस्क्ड फार एन इन्टरव्यू विद मी. आई हैड ए लॉग टॉक विद देम एण्ड आई रिपीटेड माई वार्निग टू ऑफ दे वर···एण्ड स्पेशियस दि मैनर ऑफ दि थर्ड सीम्ड टु बी दैट आफ ए डेन्जरस रेवोल्यूशनरी. दे विश्ड टु सी दि वायसराय, एण्ड इन सेंडिंग देम आन टु हिम, आई परटीकुलरली वार्न्ड हिम एबाउट दिस मैन."

यह तीसरे सज्जन, जिनपर हमारे लाट ने इतना कुछ कह डाला है, यह वही हमारे नायक बलवन्त थे। उस भावुक हृदय ने तो गहरे घाव खाए थे। आत्म-सम्मान का भाव बार-बार ठुकराया जा चुका था। उन्होंने धीरे-धीरे निश्चय कर लिया था कि भारत को हर सम्भव उपाय से स्वतंत्र करवाना ही प्रत्येक भारतवासी का सर्वप्रथम कर्तव्य है। खैर!

डेपूटेशन हताश-निराश हो 1914 के आरम्भ मे वापस लौट गया। इन्हीं दिनों भारतीय विद्रोही श्री भगवानसिंह तथा श्री बरकतुल्ला भी अमेरिका पहुंच गए। संयुक्त राज्य अमेरिका मे इन्हीं दिनों हिन्दुस्तान एसोसिएशन का कार्य जोरों से होने लगा। गदर दल, गदर प्रेस, गदर अखबार जारी हो गए। परन्तु उपरोक्त डेपुटेशन वाले सज्जनों का उस समय तक उनसे कोई सम्बन्ध न था। किन्तु उनको सर माइकेल ओडायर ने गदर-दल का ही प्रतिनिधि लिखा है। अस्तु।

उस समय तक भारतवर्ष के अभियोग अन्य जातियों के सामने नही रखे गए थे। परन्तु यह डेपुटेशन जापान और चीन के राजनीतिज्ञों से मिलता हुआ ही गया था, और इन्होंने भारत की ओर उन लोगों की सहानुभूति आकृष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया था। वेंकोवर लौटकर अपने निष्फल प्रयत्न का इतिहास सुनाते हुए श्री बलवन्तसिंह जी ने एक बड़ी प्रभावशाली वक्तृता दी थी। ऐसी वक्तृताएं राष्ट्रों के इतिहास मे विशेष मान पाती है। गहरे मनन के बाद आपको चारो ओर से यही सुनाई देने लगा था, उनके अन्तस्तल से यही एक ध्वनि उठने लगी थी कि "सब रोगो की एकमात्र औषधि भारत की स्वतंत्रता है।" आपने अपने भाषण मे, अपना अनुभव तथा गहरे मनन से जो परिणाम निकाला था, सब कह सुनाया।

वे उनकी सफाई, शान्ति, वीरता, गम्भीरता और निर्भीकता को देखकर कहा करते थे कि, "बलवन्तसिंह सिक्खों के पादरी हैं अथवा सेनापति, यह निश्चय करना बड़ा कठिन है।" अस्तु।

शीघ्र, भविष्य में क्या किया जाए, यह तो कुछ निश्चय करने का अवसर नही मिला कि एक और समस्या सामने आ खड़ी हुई—कामागाटामारू जहाज़ आ पहुंचा। किनारे पर लगने की आज्ञा ही नही मिली, उलटे उनपर अनेक अत्याचार

ढाए जाने लगे। जितने दिनों जहाज वहां रहा, उतने दिन सभी भारतीय दत्तचित्त हो उसीकी सहायता में लगे रहे। नेतृत्व फिर हमारे नायक के हाथ मे था। आपने दिन-रात एक कर दिया। इतना परिश्रम और कोई कर पाता अथवा नही, सो नही कह सकते। किराये की किस्त की अदायगी मे देर लगवाकर जो अड़चन गोरेशाही डालना चाहती थी, उसका भार भी आप पर पडा। 11 हज़ार डालर की आवश्यकता थी। सभा में 11 हज़ार डालर के लिए जो अपील आपने की थी, उसमें इतना दर्द और इतना प्रभाव था कि वर्णन नही किया जा सकता। 11 हज़ार डालर इकट्ठे हो गए। उनकी आर्थिक आवश्यकताएं पूरी होने के बाद आप और सलाह-मशविरा करने के लिए दक्षिण की ओर बहुत दूर चले गए। अचानक वे अमेरिका की सीमा पर पहुंच गए। गोरी सरकार ने पकड लिया। कहा—"अमेरिका से आए हो और चोरी से कैनेडा मे प्रविष्ट हुए हो।" यह निराधार दोष भी एक लम्बे झगड़े का कारण हुआ। आखिर कुछ झगड़े के बाद मामला तय हुआ और आप वैंकोवर पहुंचे। कुछ दिन बाद निराश होकर कामागाटामारू जहाज भी लौटने पर विवश हो गया।

कामागाटामारू के साथ भारत की जितनी आशाएं सम्बद्ध थी, सभी एकाएक मटियामेट कर दी गईं। भारत का व्यवसाय की ओर यही तो पहला प्रयत्न था। उसीमे भारत-हितकारी शासको ने पूरी तरह से ऐसा पीसने की कोशिश की कि फिर कोई ऐसी चेष्टा करने का दुःसाहस न कर सके। कैनेडा में जितने दिन जहाज ठहरा था, उतने दिन उनके साथ जो अमानुषिक व्यवहार हुए थे, उनका रोमाचकारी वर्णन लिखने का यह स्थान नही। पर उनकी याद दिल को आग लगा देती है, पागल कर देती है, रुला-रुला जाती है। उन सबका उत्तरदायित्व इमिग्रेशन विभाग के वैंकोवर वाले मुख्य अध्यक्ष मि० हॉपकिन्सन पर ही था। ये लोग उनसे बहुत नाराज थे। परन्तु ज़रा और सुनिए। श्री बलवन्तसिंह, श्री भागसिंह—ये दो ही सज्जन तो थे, जो पहले दिन से इमिग्रेशन विभाग वालो से वीरतापूर्वक लड़ते चले आए थे। कामागाटामारू जहाज के मामले मे भी सभी कार्य इन्ही दो सज्जनों ने तो किया था। वे इमिग्रेशन विभाग की आंखों के कांटे हो रहे थे। एक देशद्रोही भाड़े का टट्टू मिल गया। गुरुद्वारे मे दीवान हो रहा था। उस विभीषण ने ईश्वर-भजन में तल्लीन श्री भागसिंह और श्री बलवन्तसिंह पर पिस्तौल मे फायर कर दिए। श्री भागसिंह जी तो वही स्वर्गलोक सिधार गए, परन्तु श्री बलवन्तसिंह बच गए। गोली उनके न लगकर एक और देशभक्त श्री वतनसिंह के जा लगी। वे भी वही शहीद हो गए। यह हत्यारा उपस्थित लोगों के पंजे से बच गया। कैनेडा सरकार का कानून भी उसे कुछ दण्ड न दे सका। वह आज भी जीता है। आज वह पंजाब सरकार का लाड़ला बना हुआ है। उसने यह सब काड क्यों किया और उसमें उसे क्या भलाई दीख पड़ी, यह सब वही जाने।

इसी प्रकार की सरगर्मी से कितने ही महीने गुज़र गए। सन् 1914 का अन्तिम पक्ष आ गया। महायुद्ध छिड़ चुका था। अमेरिका-स्थित भारतीय सब देश मे वापस आने की तैयारी करने लगे। फिर हमारे नायक वहां कैसे ठहर सकते थे! सपरिवार प्रस्थान कर दिया। आप शंघाई पहुंचे, वहा आपके घर एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। वहां कार्य के सम्बन्ध में आपको अपना घर लौटने का इरादा बदलना पड़ा। परिवार तो श्री करतारसिंह के साथ भारत को भेज दिया और आप वही ठहर गए। वहा जो सब कार्य करने को था, करते हुए आप 1915 में बैंकाक पहुचे।

उन दिनो दूर पूर्व में जो विद्रोह के प्रयत्न हो रहे थे, उन्हीके संगठन तथा नियंत्रण में आपको कार्य करने के लिए ठहरना पड़ा था। उन सब विफल-आयोजनो का रोमाचकारी इतिहास लिखने का यह स्थान नही। सप्ताह-भर सिंगापुर मे जो रणचण्डी का ताडव-नृत्य हुआ था, उसमे साम्राज्यवादी जापान तथा फ्रास की सर्वशस्त्र-सुसज्जित सेनाओ की सहायता से अंग्रेज विजयी हुए। भारत का स्वतंत्रता-प्रयत्न निष्फल हो गया। ईस्टर्न-प्लाट खत्म हो गया। ऐसी ही अवस्था में श्री बलवन्तसिंह जी बैंकाक पहुचे थे। दुर्भाग्यवश आप बीमार हो गए। दशा नाज़ुक हो गई, अस्पताल जाना पडा। नासमझ डाक्टर ने आपरेशन कर डाला और वह भी बिना क्लोरोफार्म सुघाए ही। आपका कष्ट और निर्बलता बढ गई। अभी चलने-फिरने योग्य भी नही हुए थे कि अस्पताल वालों ने उन्हे चले जाने को कहा। चलने-फिरने की अयोग्यता की बात पर भी ध्यान नही दिया गया। अस्पताल से बाहर निकाल दिया गया। इतना उतावलापन क्यो किया गया, सो भी सुन लीजिए। बाहर पुलिस गिरफ्तार करने के लिए खडी थी। द्वार से बाहर निकलते न निकलते आपको गिरफ्तार कर लिया गया। वहा रहने वाले भारतवासियो के जमानत-अमानत के सब प्रयत्न विफल हो गए। सियाम की स्वतंत्र सरकार ने श्री बलवन्तसिंहजी तथा उनके अन्य साथियो को चुपचाप भारत की अंग्रेज सरकार के सुपुर्द कर दिया। सो क्यो? इसका भी एकमात्र कारण यही है कि भारत गुलाम है। गुलाम जाति के लिए कौन खाहमखाह की बला सिर पर लेता है! खैर!

श्री बलवन्तसिंह जी को सिंगापुर लाया गया। संसार-भर की धमकियां तथा लोभ देकर आपको सब भेद कह देने के लिए राज़ी करने के प्रयत्न किए गए, परन्तु उनके पास मौन के सिवा क्या धरा था? आखिर 1916 मे आपको लाहौर षड्यन्त्र के दूसरे अभियोग मे शामिल किया गया। अपराध वही था, जिसमे निष्फलता होने पर मृत्युदण्ड ही मिला करता है। आप पर विद्रोह का दोष लगाया गया। 24 दिन नाटक हुआ। बेलासिंह जैंराड आदि कई एक गवाह आपके विरुद्ध पेश हुए। नाटक दुःखान्त था। अभियुक्त को साम्राज्य की बलि-वेदी पर कुर्बान करने का निश्चय हुआ। मृत्युदण्ड सुनते ही देवता सहम गए। इस देवता को मृत्युदण्ड!

राक्षसों-दानवों में भीषण अट्टहास मच गया होगा।

कालकोठरी मे बन्द है। सिक्ख होने पर टोपी नही पहन सकते। कम्बल ही सर पर लपेट लिया है। बदनाम करने के लिए किसीने शरारत की—कम्बल के किसी एक कोने में अफीम बाध दी और कहा गया कि आप आत्महत्या करना चाहते हैं। आपने अत्यन्त शान्ति से उत्तर दिया—"मृत्यु सामने खड़ी है। उसके आलिंगन के लिए तैयार हो चुका हूं। आत्महत्या कर मैं मृत्यु-सुन्दरी को कुरूपा नही बनाऊंगा। विद्रोह के अपराध में मृत्युदण्ड पाने मे गर्व अनुभव करता हूं। फांसी के तख्ते पर ही वीरतापूर्वक प्राण दूंगा।" पूछताछ करने पर भेद खुल गया। कुछ नम्बरदार कैदियों तथा वार्डर को कुछ सजाएं हुईं। सभी ने आपकी देशभक्ति तथा निर्भीकता की दाद दी।

सन् 1916 के दिन थे। भारतवर्ष मे कालेपानी और फांसियो का जोर था। समस्त उत्तर भारत मे एकाएक खलबली मच गई थी। अन्दर ही अन्दर एक विराट गुप्त विप्लव का आयोजन हो गया था, यह भारत की जनता न जानती थी। नेतागण उन लोगों की ओर ताकने तक का साहस न करते थे। बहुत-से लोग समझते थे कि सरकार ने यों ही देश को भयभीत करने के लिए ऐसे-ऐसे भीषण अभियोग चला दिए है। जो भी हो, उस विराट आयोजन के निष्फल हो जाने पर भी उसकी सुन्दर स्मृति बाकी है। वह सुन्दर है, इसलिए कि आदर्शवादी युवकों के पवित्र रक्त से लिखी गई है। बाकी है इसलिए कि कुर्बानियां कभी व्यर्थ नही जाया करती। इसी वर्ष में (मार्च) चैत्र की 18 तारीख को श्री बलवन्तसिंह जी की धर्मपत्नी भेंट के लिए गईं। पुस्तकें तथा वस्त्र देकर बताया गया—"कल 17 चैत्र को उन्हे फांसी दे दी गई।" उनकी पत्नी कलेजा थामकर रह गईं।

श्री बलवन्तसिंह की फांसी के दिन के समाचार बाद मे मिले। आपने प्रातः काल स्नान किया तथा अपने छह और साथियों सहित (जिन्हें उसी दिन फांसी मिली थी) भारत माता को अन्तिम नमस्कार किया। भारत-स्वतंत्रता का गान गाया। हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर जा खड़े हुए। फिर क्या हुआ? क्या पूछते हो? वही जल्लाद, वही रस्सी। ओह! वही फांसी और वही प्राणत्याग।

आज बलवन्त इस संसार में नही, उनका नाम है। उनका देश है, उनका विप्लव है। जब कभी उनकी हार्दिक इच्छा पूरी होगी—भारत स्वतंत्र होगा—तो वे आनन्द और हर्ष से पुलकित हो उठेंगे।

—मुकुन्द

डाक्टर मथुरासिंह

बावजूद सबसे अधिक विपत्तियां सहन करने के, सबसे अधिक गणना मे अपने नर-रत्नों के स्वतन्त्रता बलि-वेदी पर बलिदान देने के, आज पंजाब राजनैतिक क्षेत्र मे फिसड्डी (पोलिटीकली बैकवर्ड) प्रान्त कहलाता है। बंगाल में श्री खुदीराम बसु फासी पर लटके। उन्हें इतना उठाया गया कि आज उनका नाम उस प्रान्त के कोने-कोने मे सुनाई देता है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त मे उनका नाम सुविख्यात है। परन्तु पंजाब में कितने रत्न देश के लिए जीवन-दान दे गए, कितने ही हंसते-हंसते फांसी पर चढ़ गए, कितने ही लड़ते-लड़ते छाती में गोली खाकर शहीद हो गए, परन्तु उन्हें कौन जानता है? और कहीं की तो बात ही क्या कहें, पजाब प्रान्त मे उन्हें कितने लोग जानते है? कोई साधारण वैप्लविक यो ही फासी पर लटक गया हो और उसे लोग यो ही भूल गए हों सो भी तो नही। जिन लोगो ने अथक परिश्रम से, अदम्य उत्साह से तथा अतुल साहस से भारतोत्थान के लिए वे-वे यत्न कर दिए थे कि आज उन्हे सुन-सुनकर अवाक् रह जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नही। यदि ऐसे रत्न किसी और देश मे जन्म धारण किए होते तो आज उनकी वाशिंगटन, गैरिवाल्डी, तथा विलियम वालीस की भांति पूजा होती। परन्तु उन्होंने एक अक्षम्य अपराध यह किया था कि वे भारत में पैदा हुए थे। इसीका दण्ड यह है कि आज उनको विस्मृति के अन्धकार में फेंक दिया है। न उनके कार्य की चर्चा है, न उनके त्याग की, न उनके बलिदान की ख्याति है, न उनके साहस की। परन्तु ऐसी कृतघ्नता दिखाने वाले देश की उन्नति कैसे होगी?

कट्टर आदर्शवादी डॉक्टर मथुरासिंह जी का स्थान वास्तव में बहुत ऊंचा है। आपका जन्म सन् 1883 ई० में ढुढिचाल नामक गाव, जिला झेलम (पंजाब) मे हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार हरिसिंह था। आपने पहले अपने गांव में ही शिक्षा पाई, तत्पश्चात आप चकवाल हाईस्कूल में पढ़ने लगे। आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। आप सदैव अपने सहपाठियो मे सबसे अच्छे रहते थे। वहा पर मैट्रिक पास करने के बाद आप प्राइवेट तौर पर डाक्टरी का कार्य सीखने लगे। मेसर्स जगतसिंह एण्ड ब्रदर्स की दुकान रावलपिण्डी में आज भी मौजूद है। वहीं पर आपने यह कार्य सीखना शुरू किया। बड़ी चेष्टा से आप सब कार्य करते। तीन-चार वर्ष मे ही आप इस कार्य में प्रवीण हो गये। फिर आपने अपनी दुकान अलग खोल दी। वह दुकान नौशेरा छावनी मे थी, आज भी वह चल रही है। आप सभी देशों से चिकित्सा-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएं मंगवाया करते थे। विशेष

शिक्षा ग्रहण करने के लिए आपने अमेरिका जाने का विचार किया। दुकान का झंझट अभी तय भी न हो पाया था कि आपकी सुपत्नी तथा सुपुत्री का देहान्त हो गया। परन्तु इससे क्या होता था? आपने उधर प्रस्थान कर दिया। 1913 मे आप चले थे। कुछ अधिक धन पास न होने के कारण आपको शंघाई में ही रुक जाना पड़ा। वही पर आपने चिकित्सा-कार्य शुरू कर दिया, जिसमें आपको बहुत सफलता मिली। परन्तु आपका इरादा कैनेडा जाने का था, आप कुछ और भारतीयो के साथ उधर गये। परन्तु वहां पर बहुत दिक्कतें पेश आईं। पहले केवल आपको तथा एक और सज्जन को वहा उतरने की आज्ञा मिली, दूसरे लोगों को नही। इसपर आपने वहां उतरना उचित न समझा। साथियों के आग्रह करने पर आप उतरे तो सही, परन्तु वहा पर इमिग्रेशन विभाग से अन्य साथियों के लिए झगड़ा शुरू कर दिया। अभियोग तक चला। परन्तु कानून और कोर्ट शक्तिशाली लोगो के लिए होते हैं न कि पराधीन देश वालों के लिए। वहा से आपको तथा अन्य भारतीय यात्रियों को वापस लौटा दिया गया। बहाना वही कि कैनेडा के किसी जहाज द्वारा सीधे नहीं आए। आप शंघाई लौट आए। आकर भारतीय लोगों में अपनी दीन-हीन दशा की मार्मिक कथा सुनाई और श्री बाबा गुरुदत्त सिंह जी को एक अपना जहाज़ बनाने की सलाह दी, जो सीधा कैनेडा जावे। इसी सलाह पर बावाजी ने कामागाटामारू जहाज किराये पर ले लिया और उसका नाम गुरुनानक जहाज़ रखा। आपको इधर पंजाब आना पड़ा। जहाज़ जल्दी से तैयार हो गया, अत. आप निश्चित दिन पर वहां न पहुंच सके। सिंगापुर से 35 के लगभग अन्य साथियो सहित दूसरे जहाज से चले, ताकि शंघाई तक कामागाटामारू से मिलकर उस पर सवार हों। हांगकांग पहुंचने पर पता चला कि जहाज वहां से भी चल चुका है। इसलिए आप वहीं पर ठहर गए। अब तक तक आप भारत-स्वतन्त्रता के लिए जीवन अर्पण करने का निश्चय कर चुके थे।

हागकांग में आपने प्रचार कार्य शुरू कर दिया। अमेरिका से गदर पार्टी का "गदर' अखबार आता था। आप भी वही पर वैसा ही गुप्त अखबार छपवाकर लोगों में बाटने लगे। उधर कामागाटामारू जहाज़ पर जो-जो अत्याचार होने लगे उन सबके समाचार आपको मिल रहे थे। जब मालूम हुआ कि कामागाटामारू जहाज को वापस आना ही पड़ेगा तब आपने बड़े ज़ोरो से प्रचार किया। उस समय कैंटन मे एक सिक्ख पुलिस इन्सपेक्टर महाशय इन सभी आन्दोलनों को दबाने की बड़ी चेष्टा कर रहे थे। आपने उनसे मिलकर जो बातचीत की तो वे महाशय भी इनकी सहायता करने लगे। आप किसी कार्यवश शंघाई गए। जाते समय सबसे कह गए कि अब कामागाटामारू जहाज में सवार होकर भारत को लौट चलना चाहिए। परन्तु उनका यह निश्चय जान, सरकार ने जहाज को

शंघाई में न ठहरने दिया। उनके दो-एक रोज़ बाद वे सभी लोग दूसरे जहाज़ों द्वारा भारत में लौट आए; कामागाटामारू जहाज़ अभी हुगली में ही खड़ा था कि आप लोग कलकत्ते पहुंच गए। वहा पर सरकार ने आपको पंजाब के टिकट देकर गाडी पर चढ़ा दिया। अमृतसर पहुंचते न पहुंचते बजबज की घटना हो गई। सब समाचार मिला। क्रोध से विह्वल-से हो उठे। प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी। परन्तु डॉक्टर जी ने अपने अन्य साथियो को समझा-बुझाकर कुछ शान्त किया, और उन्हें प्रचार कार्य के लिए उद्यत किया तथा स्वयं संगठन कार्य शुरू कर दिया। उधर इस विराट् चेष्टा मे आपको बम बनाने का कार्य सौंपा गया था, आप उसमे भी बडे निपुण थे। अमेरिका से सैंकडों मतवाले योद्धा विप्लव-अग्नि भड़काने के लिए आने लगे। झट से सारा प्रबन्ध हो गया, कि समस्त भारत में एक विद्रोह खड़ा कर देने का विचार उठा और तिथि तक निश्चित हो गई। देखते-देखते सब प्रयत्न, सब आयोजन विफल हो गए। कृपाल की नीचता से सब किया-धरा बीच मे ही रह गया। इधर-उधर पकड-धकड़ शुरू हो गई। परन्तु आप पकडे न गए। एक बार एक सरकारी जासूस द्वारा आपको कहा गया कि यदि वे सरकारी गवाह बन जाएं तो उन्हे क्षमा के साथ ही साथ भारी पुरस्कार भी दिया जायेगा। तब आपने उस प्रस्ताव को बिल्कुल उपेक्षा से ठुकरा दिया। फिर एक बार एक खुफिया आफिसर आपके पास तक आ पहुंचा। परन्तु वह खूब जानता था कि डॉक्टर साहब बड़े निर्भीक क्रातिकारी है। अतः उसे अकेले उनको गिरफ्तार करने का साहस न हुआ। उलटा वह उनसे कहने लगा कि सरकार ने आपके लिए क्षमा प्रदान की है तथा पुरस्कार देने का वचन दिया है, यही कहने के लिए आया हूं। आप भी खूब समझते थे कि वह उस समय उन्हे पकडने का साहस न कर सकने के कारण ही ऐसी बातें करता है। इसलिए आपने कुछ रज़ामन्दी दिखाई और उससे पीछा छुडाकर बच निकले। इस तरह आपने समझा कि अब देश में बचकर रहना एकदम असम्भव है। इसलिए आपने काबुल की ओर प्रस्थान कर दिया। वज़ीराबाद स्टेशन पर पुलिस ने पकड़ लिया, परन्तु वहा पर आपने कुछ घूंस दे दी और बच निकले। आप कोहाट की ओर रवाना हो गए। पुलिस को भी समाचार मिल गया। कोहाट स्टेशन पर पुलिस का बडा भारी दस्ता पहरे पर लगा दिया गया। उसी ट्रेन में बहुत-सी पुलिस भी चढा दी गई। मार्ग में एकाएक सब डिब्बों की तलाशी भी ले डाली गई। परन्तु आप न पकडे जा सके। कुछ दिन वहीं पर ठहरने के पश्चात् आप काबुल जा पहुंचे। वहां शीघ्र ही आप बहुत प्रसिद्ध हो गए। आपकी योग्यता देखकर आपको काबुल का चीफ मेडिकल आफिसर नियुक्त कर दिया गया।

भारत के भीतर राज्यक्रान्ति की सब चेष्टा विफल हो चुकी थी तो क्या, बाहर तो अभी बडे ज़ोरों से प्रयत्न हो ही रहा था। काबुल मे उस समय 'भारत

की अस्थायी सरकार' (प्रॉवीजनल गवर्नमेण्ट आफ इंडिया) बनी हुई थी, जो जर्मनी कमेटी से सहयोग करती हुई भारत स्वतंत्रता के प्रयत्न में लगी हुई थी। उस समय अरब, मिस्र, मैसोपोटेमिया और ईरान आदि सभी प्रदेशों में भारतीय वैप्लविक—जिनमे हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख भी सम्मिलित थे—भारत में क्रान्ति करने की चेष्टा कर रहे थे। उसी सब प्रयास में डॉक्टर जी फिर से जुट गए। उसीके सम्बन्ध में आपको जर्मनी जाना पड़ा। कुछ दिनों बाद आप फिर लौट आए। ईरान तक तो आपको बहुत बार जाना पड़ा। फिर निश्चय हुआ कि अस्थायी सरकार की ओर से एक स्वर्ण-पत्र जार के पास रूस इस आशय से भेजा जाए कि वह भारत क्रान्ति की सहायता करे। अब की बड़ी शान से प्रस्थान किया गया। कई सेवक तथा सामान से लदे हुए कई ऊंट आपके साथ थे। परन्तु उस समय कोई नीच पुरुप आपकी यात्रा की सब खबर अंग्रेज़ सरकार को दे रहा था, यह वह नहीं जानते थे। ताशकन्द नगर में आपको गिरफ्तार कर लिया गया। ईरान में लाकर शिनाख्त की गई। अभियोग चला। बहुत लोगों ने यत्न किया कि आपको भारत सरकार के सुपुर्द न किया जाए, परन्तु अब तक अन्य सभी प्रयत्नों मे जो निष्फलता हुई थी, अब ही क्यों सफलता होती?

लाहौर मे लाए गए। उधर उन दिनों ओडायरशाही का ज़ोर था। कुछ दिन न्याय-नाटक हुआ। मृत्युदण्ड सुनाया गया। आपने अत्यन्त आनन्द प्रदर्शित करते हुए सुना। आपके छोटे भैया मुलाकात के लिए गए। आपने पूछा—"क्यों भाई, मेरे मरने की तुम्हें चिन्ता तो नही?" बालक रो दिया। आपने क्रोध-मिश्रित उत्साहवर्धक स्वर से कहा—"वाह जी! यह समय आनन्द मनाने का है। क्या सिक्ख लोग भी देश के लिए मरते समय रोया करते हैं! मुझे तो अत्यन्त आनन्द है कि मैं भारतीय विप्लव को सफल बनाने के लिए, जो मुझसे हो सका, कर चुका हूं, मैं बड़ी शान्ति से फांसी के तख्ते पर प्राण त्याग करूंगा।" इस तरह आपने उसका उत्साह बढ़ाया।

फिर? फिर 27 मार्च, 1917 का दिन आ पहुंचा। उस दिन फिर वही नाटक हुआ। उस दिन के नाटक में एक ही दृश्य हुआ करता है; और वह भी कुछेक मिनट का। ये पागल लोग न जाने कहां से आ गए, जिन्हें न मृत्यु का भय था, न जीने की चाह। कार्य-क्षेत्र में हंसे, युद्ध-क्षेत्र में हंसे, फांसी के तख्ते पर भी मुस्करा दिए। उनकी महिमा अपरम्पार है।

हों फरिश्ते भी फिदा जिन पर यह वह इन्सान हैं।

—ब्रजेश

श्री बन्तासिह

इस गये-गुजरे जमाने मे भी, जबकि भारतवासियों का अध.पतन चरम सीमा को पहुंचा जा रहा है, कुछ दु.साहसी वीर ऐसे पैदा हुए, जिन्होंने उस सुन्दर अतीत की मधुर स्मृति को पुनर्जीवित कर दिया। वे लोग कुछ ऐसे निर्मम और निर्भय होकर जीवन बिता गए कि फिर से आशा होने लगी कि इस कायरता के युग में भी ऐसे व्यक्ति जन्म धारण कर सकते है, जो देश के लिए अपना अस्तित्व तक मिटा सकते है। इसीसे तो इस पतित देश के पुनरुत्थान की आशा बंधती है। ऐसे वीर अधिक वैप्लविक समाज या क्रान्तिकारी दलो मे ही दीख पड़ते हैं।

बगाल के श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी और श्री नलिनी बागची, संयुक्त प्रान्त के श्री गेंदालाल दीक्षित, पंजाब के करतारसिंह तथा बबरअकाली शहीद उन्ही लोगों मे गिने जाने लायक हैं। श्री बन्तासिह जी सगवाल भी ऐसे ही क्रान्तिकारी थे। पंजाब पुलिस आपका नाम सुनते ही भय से कांप उठती थी। जिस तरह श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी को 'टेरर आफ बंगाल पुलिस' कहा जाता था, ठीक वैसे ही आपको 'टेरर आफ पंजाब पुलिस' समझा जाता था।

आपका जन्म 1890 ई० मे सगवाल नामक गांव, ज़िला जालधर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बूटासिह था। पांच वर्ष की आयु मे आप स्कूल में दाखिल किए गए। पढने में बहुत चतुर थे। सातवी-आठवीं दोनो श्रेणियां एक ही वर्ष मे पास कर ली थीं। जब आप जालंधर के डी० ए० वी० हाई स्कूल में पढते थे, तब यानी 1904-05 मे कांगड़ा में भारी भूकम्प हुआ था, जिससे बहुत हानि हुई थी। आप भी अपने सहपाठियों का एक गुट लेकर धर्मशाला मे पीड़ितों की सहायता के लिए गए थे। आपकी कार्य-कुशलता और तत्परता देखकर सभी आप पर मुग्ध हो गए थे।

उन दिनो में ही आपने अपना एक जत्था संगठित कर लिया था, जिसका नेतृत्व आपके ही हाथ में था। उसका उद्देश्य था, दीन-दुखियों की सहायता करना। इस दल की सहायता से आप लोक सेवा का बहुत कार्य किया करते थे। स्कूल की शिक्षा समाप्त कर चुकने के बाद आपने विदेश के लिए प्रस्थान किया। पहले-पहल आप चीन गए और फिर वहां से अमेरिका चले गए।

अमेरिका-वास का आप पर बहुत प्रभाव हुआ। पद-पद पर अपनी गुलामी का अनुभव होता गया। परन्तु अपने देश लौटकर देश को स्वतंत्र कराने का इरादा किया।

आपने स्वदेश लौटकर अपने गाव मे एक स्कूल खोला और एक पंचायत बनाई।

, सभी लोग आपका बहुत मान करते थे। इससे आपको ही पंचायत का संचालक भी बना दिया गया। गांव के सब लोग उस पंचायत द्वारा किए गए निर्णयों को सहर्ष शिरोधार्य करते थे। एक बार तो यहां तक नौबत आ गई कि आपने चीफ-कोर्ट के फैसले तक को बदल डाला और दोनों पक्ष के लोगों ने आपके निर्णय के आगे सहर्ष सिर झुका दिया। बात साधारण न थी, अफसरों के कानों तक पहुंची। बहुत पेच-ताव खाए, बहुत दांत कटकटाए। उधर आपका घर अमेरिका से लौटे हुए हिन्दुस्तानियों का केन्द्र भी बना हुआ था। यह रिपोर्ट भी पहुंची। अच्छा अवसर मिला। एक दिन अचानक आपके घर पर पुलिस ने छापा मारा। परन्तु आप घर में नहीं थे। आपके बहुत-से कागजात पुलिस उठाकर ले गई। उनमें आपके लिखे हुए कई एक ट्रैक्ट भी थे। उन्हें देखकर आपपर वारण्ट निकाला गया। परन्तु आप पकड़े न जा सके। बाद में आपको गिरफ्तार करवाने के लिए पुरस्कार भी घोषित किया गया था।

एक दिन आप अपने साथी सज्जनसिंह फिरोजपुरी के साथ लाहौर के अनारकली बाज़ार में होने वाली एक गुप्त मीटिंग में सम्मिलित होने के लिए जा रहे थे। अनारकली में जाते-जाते एक सब-इन्सपेक्टर से मुठभेड़ हो गई। वह आपकी तलाशी लेने का आग्रह करने लगा। आपने बड़े सहज भाव से उसे समझाने की चेष्टा की कि शरीफ आदमी इस तरह व्यवहार नहीं किया करते। आप जाइए। हमारी तलाशी लेने का कोई कारण नहीं है। परन्तु वे सब-इन्सपेक्टर साहब भला कब पीछा छोड़ने वाले थे! जब उसने एक न सुनी, तो आपने कहा—"अच्छा तो ले, तलाशी ही ले ले।" वह तलाशी लेने के लिए जो आगे बढा, तो आपने धीरे से अपना पिस्तौल निकाल, यह कहते हुए कि "तलाशी न लेते तो अच्छा था, हमारे पास तो यही है, सो ले!" उसपर फायर कर दिया। सब-इन्सपेक्टर तो अपनी धुन में मस्त धराशायी हो गया, परन्तु आप भाग निकले। अभी भागे ही थे कि आपके साथी के पांव में ठोकर लग गई और वह गिर गया। आपने पिस्तौल के जोर से पुलिस और जनसमूह को पीछे रोके रखा और उसे उठाकर खड़ा कर दिया। परन्तु चोट अधिक लगने के कारण वह भाग न सका, इसलिए श्री बन्तासिंह जी भाग निकले। यह दिन-दोपहर की घटना है।

आप बचकर निकल गए और मियामीर स्टेशन पर पहुंचे। वहां पर पहले से ही पुलिस प्रतीक्षा में थी। परन्तु आप किसी प्रकार ट्रेन पर सवार हो ही गए। उसी गाड़ी में, उसी डिब्बे में, बहुत-से पुलिस के सिपाही सवार हो गए। आपने भी ताड़ लिया। परन्तु अब क्या हो सकता था! अटारी स्टेशन पर जब ट्रेन ठहरने ही वाली थी तो आप ट्रेन से कूद गए। पुलिस वाले हाथ मलते ही रह गए। वहां से आप (दोआबे) जालंधर पहुंचे।

उस समय गदर पार्टी के तत्कालीन प्रमुख कार्यकर्त्ता भाई प्यारासिंह को

नंगल कला, जिला होश्यारपुर के जैलदार चन्दासिंह ने पकड़वा दिया था। आपने मिलकर फैसला किया कि अब इन देशद्रोहियों को दंड देना चाहिए। अपने भाई बूटासिंह और भाई जिवन्दसिंह को साथ लिया और चन्दासिंह को उसके घर में जाकर मार डाला। तत्पश्चात् आप अपने कार्य में जुटे रहे। उसी सिलसिले मे आपने अमृतसर जिले में एक पुल भी डाइनामाइट से उड़ाया।

उसके बाद भी पुलिस से कई बार मुठभेड़ हुई, परन्तु आपका कुछ ऐसा रौब छा गया था कि आपको देखते ही पुलिस वाले अपना-अपना सिर छुपाने की चिन्ता मे नौ-दो ग्यारह हो जाते। एक बार पुलिस के घुड़सवारों ने आपका पीछा किया। आप साठ मील तक उनके आगे-आगे भागते चले गए। पाठकों को यह बात कुछ अस्वाभाविक मालूम होगी, परन्तु उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये अमेरिका की गदर पार्टी के कार्यकर्त्ता बड़े विचित्र थे। पंजाबी जाटों के शरीर बहुत सुन्दर तथा सुदृढ होते हैं, और फिर, ये लोग तो अमेरिका से खासतौर पर दौड़ने का अभ्यास करके आए थे। उनमे भी श्री वन्तासिंह बड़े सुदृढ तथा शक्तिशाली थे। बंगाल के प्रसिद्ध वैप्लविक श्री नलिनी बागची भी गोहाटी मे जब पुलिस से दो-दो हाथ करके बच गए थे, तो वे भी एक बार ही 80 मील तक चले थे। दुस्साहसी लोगों के लिए कुछ भी असंभव नहीं। उस दिन आपके पांव छलनी हो गए, तबियत खराब हो गई, अत: आप अपने घर चले गए और बहुत दिनों तक वहां विश्राम किया।

आपको कुछ ऐसा विश्वास-सा हो गया था कि वे किसी अपने सम्बन्धी के विश्वासघात से ही पकड़े जाएंगे। परन्तु स्वास्थ्य के अधिक बिगड़ जाने के कारण आप कुछ कर न सके। लाहौर षड्यन्त्र का मुख्य केस उन दिनों चल रहा था। दूसरे बड़े भारी केस के लिए चारों ओर धर-पकड़ हो रही थी। दल का सब प्रबन्ध तहस-नहस हो चुका था। ऐसी अवस्था मे आत्मनिर्भरता के अतिरिक्त और कोई सहारा शेष न था। इसीलिए आपको रुग्णावस्था मे अपने ही घर जाना पड़ा। बहुत दिनो तक वहीं सुरक्षित रहे। परन्तु बाद मे एक सम्बन्धी उन्हे आग्रह करके अपने घर ले गया, ताकि उनकी चिकित्सा कुछ और तनदेही से की जा सके। वे उसका आग्रह टाल न सके। वहा पर जाकर टिकने के बाद शीघ्र ही उसी रिश्तेदार ने पुलिस को बुला लिया। होश्यारपुर के सुपरिटेंडेण्ट बड़ी भारी संख्या में सशस्त्र सैनिको को लेकर वहा पहुंचे।

पुलिस ने चारो ओर से घेर लिया। उस छोटी कोठरी का द्वार खोलते ही सामने पुलिस खड़ी देखकर आप खिलखिलाकर हंस पड़े और अपने सम्बन्धी से कहने लगे—"भाई, पुलिस को बुलाना था, तो मुझे एकदम निशस्त्र क्यों कर दिया था? पिस्तौल-रिवाल्वर नहीं तो एक लाठी या डण्डा ही रहने देते। एक वीर, सैनिक की भांति लड़ता-लड़ता प्राण तो दे सकता है।"

इसपर पुलिस अध्यक्ष ने कहा—"वाह जनाब ! बड़े वीर बने फिरते हो ! हम लोग क्या सभी कायर और बुज़दिल ही हैं ?"

आपने मुस्कराकर कहा—"बहुतखूब ! इस समय मुझे निशस्त्र एक कोठरी मे बन्द देखकर आप लोग गिरफ्तार करने के लिए आगे बढने का साहस कर रहे हैं। ज़रा बाहर निकल जाने दो तो फिर देखू कौन पकड़ सकता है !"

उस वीर सैनिक की यह इच्छा भी, कि सैनिक की भांति लडता हुआ प्राण दे, पूर्ण न हुई। आप गिरफ्तार करके होश्यारपुर लाए गए। वहा डिप्टी कमिश्नर की अदालत में पेश किए गए। कोई एक घण्टा तक डिप्टी कमिश्नर से बातचीत होती रही। वह आपकी योग्यता और वीरता तथा धीरता देखकर मुग्ध-सा हो गया। इधर आपकी गिरफ्तारी की खबर दोआबे भर मे आग की तरह फैल गई। लोग सैकड़ो की संख्या मे आपके दर्शनो के लिए जमा होने लगे। कचहरी का हाता खचाखच भर गया था। आप जब बाहर निकले तो लोग दर्शनो के लिए टूट पड़े। ऐसी दशा मे अपने उन भाइयों से कुछ कहने की आज्ञा मांगी। वे इन्कार न कर सके। आपने उस उमड़ते हुए जन-समुद्र को शान्त होने के लिए कहकर एक छोटा-सा भाषण दिया और कहा—

"प्यारे भाइयो ! आज हमें इस तरह बेड़ियों और ज़ंजीरों से कसा हुआ देखकर आप लोग निराश न हो। हमारी निश्चित मृत्यु सामने देखकर आप लोग घबराएं नही। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे बलिदान व्यर्थ न जायेंगे। वह दिन शीघ्र आ रहा है, जबकि भारत पूर्णतया स्वतंत्र हो जायेगा और अकड़बाज गोरे लोग आपके पाव पर गिरेंगे × × × आप सब लोगो को स्वतंत्रता की बलिवेदी पर प्राण देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

आपको वहां से लाहौर ले आए। श्री बलवन्तसिंह जी के साथ ही आप पर भी अभियोग चला। यों तो सदैव गुलाम देशों में न्याय-नाटक हुआ करता है, पर उन दिनों पंजाब मे ओडायरशाही की तूती बोलती थी। गज़ब का न्याय था, कोई अपील भी न हो सकती थी। कुछ ही दिनो मे सब कुछ हो चुका। आपको मृत्युदण्ड सुनाया गया। आपने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"हे परमात्मा। तुझे कोटिशः धन्यवाद है, जो तूने मुझे देश-सेवा मे जीवन बलिदान करने का सुअवसर प्रदान किया है।"

फासी का हुक्म सुनकर आपको असीम आनन्द हुआ, और उस दिन से फांसी लगने के दिन तक आपका 11 पौंड वज़न बढ गया था।

आखिर एक दिन आपको प्रातःकाल उसी फांसी के तख्ते पर ला खड़ा किया गया। आप उस समय सदा की तरह प्रसन्नचित्त थे। तख्ता खिंचा। रस्सी मे गला फंसाया ही जा चुका था। एकाध झटके से प्राण निकल गए और इस तरह पंजाब का एक और नर-रत्न भारत-स्वतंत्रता की बलिवेदी पर प्राणोत्सर्ग कर गया !!

—गिरीश

श्री रंगासिंह

सन् 1914-15 में भारत की स्वाधीनता के व्यर्थ प्रयास में लाहौर सेण्ट्रल जेल की बलिवेदी पर अपने नश्वर शरीर की आहुति देने वाले सैकड़ों नर-रत्नों में से आप भी एक थे। जालंधर ज़िले के खुर्दपुर नामक गांव में श्री गुरुदत्तसिंह जी के घर सन् 1885 के लगभग आपका जन्म हुआ था। कुछ दिन स्कूल में विद्याध्ययन करने के बाद आपने सैनिक शिक्षा पाने की इच्छा से फौज में नौकरी कर ली। 30 नम्बर के रिसाले में 23 वर्ष की आयु तक नौकरी करने के बाद, सन् 1908 मेआप अमेरिका चले गए।

इसके बाद वही पुरानी कथा है। गदर पार्टी बनी, अखबार निकला, प्रचार हुआ और आपके विचारो ने पलटा खाया। सन् 1914 में, जबकि बहुत-से सिक्ख अमेरिका से भारत को वापस आ रहे थे, तो आप भी युद्ध में अंग्रेजों से दो-दो हाथ करने की लालसा से देश को वापस चले आए।

6 वर्ष तक बाहर रहने के बाद, 21 दिसम्बर, सन् 1914 को आपने फिर भारत की भूमि पर पैर रखा और लगभग एक मास तक मकान पर ठहरकर घर का सारा प्रबन्ध आदि ठीक किया और फिर गांव-गांव जाकर गदर का प्रचार कार्य करने लगे।

कहते है कि जब 19 फरवरी के विप्लव की बात खुल गई और बहुत-से नेता गिरफ्तार कर लाहौर सेण्ट्रल जेल में बन्द कर दिए गए तो जेल पर हमला कर उन्हे छुडाने के लिए कपूरथला राज्य की मेगजीन लूटकर अस्त्र-शस्त्र लेने की बात निश्चय की गई थी। उस समय अगुआ लोगों मे रंगासिंह भी थे। बाद को पर्याप्त शक्ति के न होने के कारण निश्चय किया गया कि पहले वाला के पुल पर तैनात किए गए पुलिस के आदमियों को मारकर उनकी बन्दूकें आदि छीन ली जाएं और फिर उनको लेकर मेगजीन पर हमला किया जाए। अस्तु, एकत्रित मनुष्यो मे से कुछ को इस काम के लिए चुना गया, जिनमे हमारे नायक भी थे। जब सिपाहियों को चौकन्ना देखकर उस समय उनपर हमला स्थगित कर दिया गया तो आप बहुत नाराज हुए। आपने कहा—"यदि इसी प्रकार अपनी शक्ति को कम समझकर हम हरएक काम को छोड़ते रहेंगे, तो कुछ भी न हो सकेगा। हमें तो इन्हीं थोड़े-बहुत आदमियों को लेकर सामना करना है।" बाद में इसी पुल पर हमला कर ये लोग चार आदमियों को मारकर उनकी बन्दूकें आदि छीन ले गए थे।

अन्त में जब 26 जून, सन् 1915 की रात को आप एक शरबत वाले की दुकान

पर सो रहे थे तो पुलिस ने भेद मिल जाने पर अचानक हमला कर दिया। गिरफ्तार हो जाने पर आप पर सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करने के अपराध में अभियोग चला और अदालत से फांसी की सजा मिली। इस प्रकार लाहौर सेण्ट्रल जेल के वियोगान्त नाटक के एक और दृश्य के बाद उसपर सदा के लिए पर्दा पड़ गया।

—घनश्याम

श्री वीरसिंह

आपका जन्म बड़ोवाल, जिला होश्यारपुर में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार बूटासिंह था। आप सन् 1906 में कैनेडा चले गए थे। अस्तु, एक तो स्वाधीन देश, फिर आन्दोलन की तेजी, अस्तु आप भी इस लहर से खाली न रहे। विचार-प्रवाह तो चल ही चुका था। इन्हीं दिनों कामागाटामारू की घटना, डपूटेशन की असफलता तथा युद्ध के छिड जाने के कारण चारों ओर से गदर की ही आवाज सुनाई देने लगी। गाढ़ी कमाई के रुपये को गदर के काम मे देकर लोगों ने भारत की ओर आना आरम्भ कर दिया। इस समय शायद ही कोई ऐसा बचा हो जिसने इस कार्य मे भाग न लिया हो। प्रायः सभी जगह यही सुनने में आता था कि चलो, देश चलकर आजादी के लिए युद्ध करें। अस्तु, इन्ही सब बातों से प्रभावित होकर आप भी भारत वापस आए। और इधर-उधर घूमकर गदर का प्रचार शुरू कर दिया।

6 जून, सन् 1915 का दिन था। आप चिट्टी गांव में एक कुएं पर स्नान कर रहे थे कि पुलिस ने आ घेरा। गिरफ्तार कर आप लाहौर लाए गए और दूसरे केस में 100 आदमियों के साथ आप पर अभियोग चलाया गया। आप पर मेगजीन पर हमला करने तथा डाके डालने का अपराध लगाकर मौत की सजा दी गई।

उक्त 100 अभियुक्तों में से आपके अतिरिक्त पांच को फांसी और 42 को आजन्म काले पानी का दण्ड दिया गया था; साथ ही उनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई। भारत के स्वतंत्रता-इतिहास में लाहौर सेन्ट्रल जेल का भी एक विशेष स्थान रहेगा।

—यादव

श्री उत्तमसिंह

अपने ही हाथों विप्लव-यज्ञ रचकर अन्त में उसपर अपनी ही आहुति देने वाले अनेक मस्त पागलों में से उत्तमसिंह भी एक थे। लुधियाना जिले के हंस नामक गांव में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम श्री जीतसिंह था। आपका दूसरा नाम श्री राघोसिंह भी था।

कहां और कितनी शिक्षा पाने के बाद, किस आयु तक देश में रहकर, आप कब अमेरिका चले गए थे, इन सभी बातों का अनुसन्धान अभी तक किया ही नहीं गया। हा, इतना अवश्य पता चला है कि अमेरिका में गदर पार्टी के आप एक अच्छे कार्यकर्त्ता थे और उसी पार्टी के निश्चयानुसार सन् 1914 के दिसम्बर मास में अपने कुछ और साथियों के साथ आप भारत में गदर का प्रचार करने के उद्देश्य से वापस आ गए थे। आते समय भी मार्ग में सेनाओं के अन्दर तथा अन्य भारतीयों में गदर का प्रचार करते आए थे।

स्मरणीय करतारसिंह से आपकी पहले ही से जान-पहचान थी। भारत में आकर गन्धासिंह, बूटासिंह, अर्जुन सिंह, पिंगले आदि से भी आप मिले और बहुत जोरों से कार्य आरम्भ कर दिया।

इन पागलों के पागलपन में भी एक स्फूर्ति है। उसमें भी एक नवीनता की झलक है। अस्तु, इसी नवीन उत्साह से प्रेरित होकर उस दिन जब 19 फरवरी, सन् 1915 को केवल 50 आदमियों को साथ लेकर तरुण करतार ने ब्रिटिश भारत की सबसे मजबूत छावनी फिरोजपुर पर हमला करने का साहस किया था, तो आप भी उनके साथ थे। परिस्थिति प्रतिकूल हो जाने से उन्हें उस दिन सफलता भले ही न मिली हो, किन्तु उनका साहस, उनका उत्साह, उनकी लगन और आत्मविश्वास आदि का अनुमान इस बात से पूरी तौर पर किया जा सकता है।

19 फरवरी के विराट आयोजन के विफल हो जाने पर चारो ओर धर-पकड़ शुरू हो गई। उत्तमसिंह के नाम भी वारंट जारी किया गया, किन्तु उस समय आप पुलिस के हाथ न आ सके। अपने प्रगाढ़ परिश्रम से बनाए हुए भवन को इस प्रकार नष्ट होते देख, वे हताश न हुए। उस समय कुछ एक को छोड़कर, प्रायः सभी नेता गिरफ्तार हो चुके थे, अतः आपने उन्हें जेल से निकालने की इच्छा से नये सिरे से अस्त्र-शस्त्र-संग्रह आरम्भ कर दिया। पहले कपूरथला राज्य की मेगजीन को लूटने का विचार था, किन्तु बाद में बाला के पुल पर तैनात 750 कारतूस समेत सिपाहियों की पन्द्रह रायफलें, केवल 8-7 पिस्तौलधारी विप्लवियों

ने छीन ली थी। इस कार्य के संगठन में भी उत्तमसिंह का ही अधिक हाथ था। आप बम बनाना भी जानते थे और एक बार और कुछ न मिलने पर आपने पीतल के लोटों से ही बम बनाने का काम शुरू कर दिया था।

अभी जेल पर हमला करने की आयोजना हो ही रही थी कि 19 सितम्बर, 1915 को, जब आप एक और साथी के साथ फरीदपुर राज्य के माना-बधवाना नामक गाव के पास एक साधु की कुटिया में ठहरे थे, गिरफ्तार कर लिए गए। उस समय आपने कहा—

"मुझे दुख है तो केवल इस बात का कि मेरे हाथ मे कोई रिवाल्वर या पिस्तौल आदि न थी।" पकड़े जाने पर दोनों ने एक साथ ही राष्ट्रीय गीत गाने शुरू कर दिए। लाहौर के तीसरे पड्यन्त्र मे अदालत से आपको फांसी की सज़ा मिली और कुछ दिनो बाद उस विराट-यज्ञ की एक और आहुति समाप्त हो गई।

—×××

डाक्टर अरुड़सिंह

देश-प्रेम में मतवाले होकर जलती हुई शमा की पहली ही लपट पर एक मस्त परवाने की भांति वे अपना सब कुछ स्वाहा कर गए। उनके लिए तो—

जिन्दगी नाकिस थी आखिर,
कर लिया मदफन पसन्द।
सुना था यह, राहते कामिल,
इसी मंजिल में है ॥

डाक्टर साहब का जन्म जालंधर जिले के सगवाल नामक गांव मे हुआ था। शहीद भाई धन्तासिंह भी इसी गांव के थे और ये दोनों एक ही साथ काम किया करते थे। इनमें खोज-खबर करने का एक विशेष गुण था। प्राय: थाने में जाकर वहां के भी भेद ले आया करते थे। चालीस कोस चलने पर भी आप थकते न थे। इनकी काली भरी हुई दाढ़ी तथा मोटी आंखें देखकर प्राय: सभी लोग डर जाया करते थे। किन्तु आप स्वभाव के बड़े सरल तथा भावुक थे। आपका रहन-सहन बिल्कुल सादा था। आप पंजाब से बाहर रहकर काम करना पसन्द नहीं करते थे। यहां तक कि जिन दिनों पुलिस बुरी तरह आपकी तलाश कर रही थी तब भी आप पंजाब में ही गांव-गांव घूमकर प्रचार करते रहे और कई बार पुलिस के हाथ आकर भी निकल गये। आप नित्य ही प्रातःकाल प्रार्थना किया करते थे कि हे प्रभु ! मेरी मृत्यु गोली लगकर या फांसी पर लटककर एक वीर की भांति हो।

एक अमेरिकन से आपका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्हें आप अपना गुरु कहा करते थे। एक बार पता लगा कि वे लाहौर की सेण्ट्रल जेल मे गिरफ्तार कर रखे गए हैं। बस, पुलिस की कड़ी निगाह होते हुए भी, आप वहां जा पहुंचे और जेल के अन्दर जाकर उनसे मिले और सारा भेद लेकर वापस चले आए। एक ओर तो स्थान-स्थान पर आपके फोटो लगे हैं और गिरफ्तारी पर इनाम बढ़ा जा रहा है, उधर दूसरी ओर आप सरकार से, जेल जैसी जगह पर जाकर वहीं का सारा भेद ले रहे हैं।

जब लाहौर जेल में आपका आना-जाना काफी बढ़ चुका था तो किसी एक भेदिये ने पुलिस को इस बात का पता दे दिया। एक दिन जेल के दरवाज़े पर खड़े थे कि एक पुलिस अफसर ने सवाल किया—

"तुम कौन हो ?"

"मैं अरुड़सिंह हूं।"

"कौन अरुड़ सिंह ?"

"जिसको ढूढ़ते-ढूढ़ते तुम थक गए हो।"

अफसर को विश्वास न हुआ और वह घूमकर चल दिया। उस समय आपके दिल में न जाने क्या आई कि फिर उसे बुलाकर स्वयं अपने को गिरफ्तार करवा दिया।

अभियोग चलने पर सब बातें स्वीकार कर ली। पुलिस अफसर सुक्खासिंह ने जब आपसे कोई चुभने वाली बात कही तब आपने डपटकर कहा—"कायर, तेरे जैसों को मैं बटेर समझता रहा हूं। यदि चाहता तो एक पल में गर्दन मरोड़कर छुटकारा पा जाता, किन्तु कायरों के खून से हाथ रंगना मैं पाप समझता हूं।" एक और अवसर पर थानेदार के यह पूछने पर कि क्या तुम मुझे और भी कभी मिले थे ? आपने उत्तर दिया—"मिलना तो क्या, तुम्हारे सारे कामों की रिपोर्ट मेरी डायरी में दर्ज है।" अन्त में अदालत से आपको फांसी की सजा मिली। जेल में आप और साथियों को कहानियां सुनाया करते थे और फासी के दिन तक काफी मोटे हो गए थे।

बेफिक्री तथा मस्तानेपन के तो आप साक्षात् अवतार थे। जिस मौत का नाम सुनकर लोग कांप उठते हैं उसीको सामने देखकर भी आपके मस्तानेपन में अन्तर न आया। जिस दिन प्रात:काल आपको फांसी लगनी थी उस दिन आप एक गहरी नींद में सो रहे थे। अफसर ने आकर जगाया, कहा—"चलो, तुम्हें फांसी दी जाएगी।" आपने खड़े होकर ऊंचे स्वर से 'वन्दे मातरम्' की ध्वनि की और हंसते हुए फांसी के तख्ते की ओर चल दिए।

इसके बाद वही फासी का तख्ता, वही जल्लाद, वही रस्सी और वही अन्तिम झटका, और बस × × ×

—पथिक

बाबू हरिनामसिंह

रविबाबू ने गुरु गोविन्दसिंह के समय के सिक्खों पर एक कविता लिखी थी। उसमें आपने कहा था—"जिन लोगों ने किसी का कर्ज नहीं उठा रक्खा और मृत्यु जिनके चरणों की दासी है, ऐसे निर्भय और निर्मम सिक्ख उठे हैं।"

इन्हीं निर्भय और निर्मम नर-रत्नों में से हमारे नायक हरिनामसिंह भी हैं। आपका जन्म जिला होश्यारपुर के साहरी नामक गांव में हुआ था। पिता का नाम श्री लालसिंह था। पढ़ने-लिखने में आप बड़े चतुर थे, किन्तु हाई क्लास में पहुंचते ही एकदम स्कूल छोड़कर सेना में जा भरती हुए। वहां पर आपका अलग जत्था था, जिसमें शब्द-कीर्तन हुआ करता था। साधारणतया आप कहा करते थे, "हमारा भी क्या जीवन है? हम इतने पतित हो गये हैं कि दस या ग्यारह रुपये के लिए मारे-मारे फिरते हैं और अपनी तथा दूसरी गुलाम जातियों की जंजीरें जकड़ने में सहायता करते हैं। इस नौकरी से तो भूखों मरना अच्छा है और इस जीवन से तो मृत्यु अच्छी है।" इत्यादि। आपके एक-दो मित्र हंसकर पूछते—"क्यों जी, अगर आपका ऐसा मनोभाव है तो नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते?" तो आप मुस्कराकर उत्तर देते, "जानते तो हो कि रुपये के लिए नौकरी नहीं करता हूं। घर में सम्पत्ति है, वहीं रहकर आराम से गुजर सकती है। परन्तु…"

भला ऐसे विचारों का युवक कब तक नौकरी कर सकता था। डेढ़ वर्ष बाद नौकरी छोड़कर घर चले आये। सेना में श्री बलवन्तसिंह जी से आपका बहुत स्नेह था। विचार भी एक ही जैसे थे और नौकरी भी एक ही साथ छोड़ी।

कुछ दिन घर रहने के बाद आप बर्मा पहुंचे और फिर वहां से हांगकांग जाकर ट्राम कम्पनी में नौकर हो गए। वहां पर बहुत-से भारतीय, जो कैनेडा और अमेरिका जाने के लिए घर से आते थे, उन्हें इमिग्रेशन विभाग वाले निराश कर घर लौटा देते। उन बेचारों के पास खाने तक को कुछ न बचता था। उस समय हरिनामसिंह जी अपने पास से सहायता देकर उनको ढाढ़स बंधाते थे।

धीरे-धीरे उन्हें पता चला कि अमेरिका में लोग बड़े मजे में रहते हैं और वहां के वायुमण्डल में रहकर साधारण से साधारण भारतीय भी भारत को स्वतंत्र करवाने की चिन्ता करने लगता है। अस्तु, स्वतंत्रता-पाठ सीखने का उपयुक्त स्थान समझकर आपने हांगकांग स्थित भारतीयों को अमेरिका जाने के लिए प्रोत्साहित करना शुरू कर दिया। आवश्यकता पड़ने पर आप उनकी सहायता भी कर देते थे।

अन्त में पहली दिसम्बर, सन 1907 को, जबकि आपकी आयु 20 वर्ष से कम

ही थी, आपने भी अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। वहां पहुंचकर एक वर्ष तक विक्टोरिया नगर में रहने के बाद, भारतवर्ष में स्कूल आदि शिक्षा-कार्य में व्यय करने के लिए धन एकत्रित कर भेजने लगे।

पहली जनवरी, 1908 को आप कैनेडा से संयुक्त प्रदेश चले गए और वहां सीएटल नगर के एक स्कूल में पढ़ने लगे। तीन वर्ष बड़े यत्न से विद्योपार्जन होता रहा। इन्हीं दिनों कैनेडा स्थित भारतीयों ने डेढ़ लाख रुपए की पूजी से एक इण्डियन ट्रेडिंग कम्पनी खोली और सुविधा के लिए एक अंग्रेज मैनेजर भी रख लिया। कम्पनी के हिस्सेदारों में हमारे नायक भी थे। कार्य खूब चल निकला। कम्पनी की एकदम ऐसी उन्नति गोरे पूंजीदारों से देखी न गई। उन्होंने उस अंग्रेज को अपनी तरफ मिला लिया और उसने बेईमानी प्रारम्भ कर दी। हरिनामसिंह उसकी चालाकी ताड़ गए और उसपर देखरेख रखने लगे। झगड़ा बढ़ने पर गोरे लोगों की आखो मे वे बेतरह खटकने लगे। आपको फंसाने की चेष्टा होने लगी। परन्तु आपके एक अग्रेज मित्र रैमस्बिर्ग, जोकि वहां मैजिस्ट्रेट थे, यह हालत देख उन्हे अपने साथ ले गए। यह महाशय संयुक्त प्रदेश के रहने वाले थे और इन्हीके यहां रहकर आपने तीन वर्ष तक शिक्षा पाई थी।

कुछ दिन बाद आप फिर कैनेडा चले गए और वहां से एक 'दि हिन्दुस्तान' नामक अंग्रेजी पत्र निकालना शुरू कर दिया। आप बड़े ओजस्वी लेखक थे। कैनेडा-वासी भारतीयों पर आपका विशेष प्रभाव था। सरकार को यह अच्छा न लगा और उनपर बम बनाने और सिखाने, विद्रोह-प्रचार आदि दोष लगाकर 48 घण्टे के अन्दर कैनेडा से निकल जाने की आज्ञा दी गई। बड़ी विकट परिस्थिति थी। तुरन्त रैमस्बिर्ग को तार दिया गया। उन्होंने कैनेडा सरकार को तार दिया कि उन्हें निर्वासित न किया जाए, मैं उन्हें साथ ले आने के लिए आ रहा हूं। और अपना प्राइवेट बोट लेकर उन्हें साथ ही ले आए। कुछ दिन के बाद आपको फिर कैनेडा जाने की आज्ञा मिल गई। 20 मार्च 1911 से आप संयुक्त प्रदेश में वर्कले युनिवर्सिटी मे पढ़ने लगे। गदर अखबार मे भी आप हर तरह सहायता करते थे।

इधर दो सज्जन, भाई गुरुदत्तसिंह और भाई दलीपसिंह, एक बमकेस में पकड़े गए, उधर कामागाटामारू जहाज बन्दरगाह पर आ पहुंचा। हरिनामसिंह अपने अन्य साथियों सहित बाबा गुरुदत्तसिंह तथा अन्य यात्रियों से सलाह करने गए और वहीं पकड़े गए। शेष साथी तो छोड़ दिए गए, पर आपको न छोड़ा गया। उन्हें फिर देशनिकाले की आज्ञा हुई। कुछ दिन के झगड़े के बाद, यह जानकर कि इस बार कोई सफलता न होगी, आप भारत की ओर आने वाले एक जहाज पर सवार हो गये और चीन, जापान तथा स्याम आदि में गदर पार्टी का कार्य करते हुए बर्मा पहुंचे। यह 1915 के दिन थे। सिंगापुर के विद्रोह-दमन के बाद बहुत-से गदर नेता बर्मा पहुंच गये थे। इरादा था कि अक्टूबर 1915 में बकरीद के दिन

विद्रोह खड़ा किया जाए और बकरों की जगह गोरे शासकों की कुर्बानी दी जाए, परन्तु बाद मे 25 दिसम्बर का दिन निश्चित किया गया। इन्हीं सब चेष्टाओं में दिन-रात जुटे रहकर घोर परिश्रम कर रहे थे कि एक दिन आप एकाएक मांडले में गिरफ्तार कर लिए गए। अभियोग चला और आपको मृत्युदण्ड दिया गया। अभी जेल में ही बन्द थे और फांसी नही दी गई थी कि आप जेल से भाग गए। किन्तु शीघ्र ही पकड़कर फांसी पर लटका दिए गए।

आपके आग्रह से आपकी धर्मपत्नी ने आपके ही छोटे भाई से विवाह कर लिया था। बाबू हरिनामसिंह बड़ी स्वतंत्र प्रकृति और दृढ़चित्त के आदमी थे। आप साधारणतया "हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा" और "मरना भला है उसका जो अपने लिए जिए" आदि पद्य गाते रहते थे।

श्री भागसिंह, श्री हरिनामसिंह और श्री बलवन्तसिंह; इन तीनों सज्जनों में अगाध प्रेम था। तीनों का रहन-सहन, खानपान और कामकाज एक साथ ही होता था। उस समय गदर आन्दोलन के ये तीनों ही प्राण थे। एक-एक कर उन तीनों ने ही भारत को स्वतंत्र करवाने के लिए बारी-बारी से आत्मदान दे दिया। देश के लिए वे जिए और देश के ही लिए वे मर भी गए। प्रेम का कितना सुन्दर दृष्टान्त है!

—अज्ञात

श्री सोहनलाल पाठक

सन् 1914 की बात है। अमेरिका की गदर पार्टी की ओर से प्रायः सभी देशों में गदर-प्रचार के लिए आदमी भेजे जा रहे थे। अस्तु, पाठक जी भी इसी पार्टी की ओर से बर्मा मे प्रचार-कार्य करने के लिए भेजे गए। सन् 1915 के आरम्भ मे ही आप बैंकाक आए और कुछ दिन वहां पर गदर का कार्य करने के बाद रंगून आ पहुंचे। यहां पर संगठित रूप से अपना केन्द्र बनाकर सोहनलाल ने उस दिन की व्यर्थ आशा से, जबकि सारे भारत में एकसाथ ही एक बार फिर रणचण्डी का तांडव नृत्य प्रारम्भ हो जाएगा, सेनाओं मे विप्लव का प्रचार-कार्य जोरों के साथ आरम्भ कर दिया।

21 फरवरी आई और निकल गई। भेद खुल जाने से उस दिन बलवा न हो सका और चारों ओर धर-पकड़ होने लगी। किन्तु विप्लवियों के जीवन मे यह कोई नई बात न थी। उनका तो जीवन ही असफलताओं का जीवन है। वे तो "कर्मण्ये वाधिकारस्ते" का ही पाठ लेकर इस क्षेत्र मे आए थे। अस्तु, सोहनलाल इतने पर भी हताश न हुए। उन्होंने नये उत्साह से फिर विप्लव की आयोजना आरम्भ कर दी।

अगस्त, 1915 मे, एक दिन जबकि वे मेमियो के तोपखाने में गदर का प्रचार कर रहे थे, एक जमादार ने उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। तीन पिस्तौलें तथा 270 कारतूसें पास होते हुए भी न जाने सोहनलाल ने उस समय उनका प्रयोग क्यों नहीं किया।

पाठक जी जेल में बन्द थे। अधिकारियों के आने पर खड़ा होना भी शायद उनके प्रोग्राम के बाहर था। हां, एक बात अवश्य थी, वे कभी किसीके साथ असभ्यता का व्यवहार न करते थे। यदि कोई उनसे खड़े होकर बात करता तो आप भी उससे खड़े होकर ही बात करते थे। एक बार बर्मा के लार्ड महोदय जेल देखने आए। जेलर ने सोहनलाल से प्रार्थना की कि उनके आने पर खड़े होकर स्वागत कर लेना। जब आप इसपर राजी न हुए तो जेलर ने एक और चाल चली। जिस समय लार्ड महोदय जेलमे आए तो जेलर पहले ही से पाठकजी के पास जाकर खड़े-खड़े उनसे बातें करने लगा। आप भी खड़े होकर उससे बातें करने लगे और लार्ड के आने पर उन्हें फिर से खड़ा होना न पड़ा। अपनी दो घण्टे की बातचीत में लार्ड ने आपसे बहुतेरा अनुरोध किया कि तुम माफी मागकर प्राणदण्ड से बरी हो जाओ, किन्तु आपने एक न मानी।

अन्त में फासी के दिन अंग्रेज मैजिस्ट्रेट ने आकर फिर आपसे माफी माग लेने

का अनुरोध किया। मृत्यु मुंह फैलाए सामने खड़ी है। फांसी का तख्ता तथा रस्सी का फन्दा ठीक हो चुका है। ऐसे समय में जेल के सभी कर्मचारी सोहनलाल के मुह की ओर देखकर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर की निस्तब्धता के बाद उस पागल पुजारी ने मुस्कराते हुए कहा—"क्षमा मांगनी हो तो अंग्रेज मुझसे क्षमा मांगें। मैंने कोई अपराध नहीं किया। असली अपराधी तो वे ही हैं। हां, यदि मुझे बिल्कुल ही छोड़ने का वचन दो तो तुम्हारी बात पर विचार कर सकता हूं।"

उत्तर मिला—"यह तो अधिकार से बाहर की बात है।"

"तो फिर अब देर क्यों करते हो ? तुम अपना कर्त्तव्य पूरा करो और मुझे अपना कर्त्तव्य करने दो।"

देखते-देखते तख्ता खिंचा और रस्सी के झटके के साथ ही यह दृश्य भी समाप्त हो गया।

—सुबोध

सूफी अम्बाप्रसाद

आज भारतवर्ष मे कितने लोग उनका नाम जानते हैं ? कितने उनकी स्मृति मे शोकातुर होकर आंसू बहाते हैं। कृतघ्न भारत ने कितने ही ऐसे रत्न खो दिए और क्षण भर के लिए भी दुख अनुभव न किया।

वे सच्चे देशभक्त थे, उनके हृदय में देश के लिए दर्द था। वे भारत की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे, भारत को उन्नति-शिखर पर पहुंचाना चाहते थे। तो भी आज भारत के बहुत कम लोग उनका नाम जानते हैं। उनकी कदर भी की तो ईरान ने। आज वहा 'आका सूफी' का नाम सर्वप्रिय हो रहा है।

सूफी जी का जन्म 1858 ई० में मुरादाबाद मे हुआ था। आपका दाहिना हाथ जन्म से ही कटा था। आप हंसी में कहा करते थे—"अरे भाई, हमने सत्तावन में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया। हाथ कट गया, मृत्यु हो गई, पुनर्जन्म हुआ। हाथ कटे का कटा आ गया।"

आपने मुरादाबाद, बरेली और जालन्धर आदि कई शहरों मे शिक्षा पाई। एफ० ए० पास करने के पश्चात् आपने वकालत पढ़ी, परन्तु की नही। आप उर्दू के प्रभावशाली लेखक थे। आपने यही काम संभाला।

सन् 1890 ई० में आपने मुरादाबाद से 'जाम्युल इलूम' नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र निकाला। इसका प्रत्येक शब्द इनकी आन्तरिक अवस्था का परिचय देता था। वे हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक थे, परन्तु उनमें गम्भीरता भी कम न थी। वे हिन्दु-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्षपाती थे और शासकों की कड़ी आलोचना किया करते थे।

सन् 1897 में आपको राजद्रोह के अपराध में डढ़ वर्ष का कारागार मिला। जब 1899 मे छूटकर आए तो यू० पी० के कुछ छोटे-छोटे राज्यों पर अंग्रेज लोग हस्तक्षेप कर रहे थे। सूफी जी ने वहां के अफसरों तथा रेजिडेण्टों का खूब भंडाफोड़ किया। आपपर मिथ्या दोषारोपण का अभियोग चलाया गया और सारी जायदाद ज़ब्त कर, छह साल का कारागार दिया गया। जेल मे उन्हें अकथनीय कष्ट सहन करने पड़े, परन्तु वे कभी विचलित नहीं हुए।

सूफी जी जेल मे बीमार पड़े। एक गलीज़ कोठरी में बन्द थे। उन्हें औषधि नही दी जाती थी। यहां तक कि पानी आदि का भी ठीक प्रबन्ध न था। जेलर आता और हंसता हुआ प्रश्न करता—"सूफी, तुम अभी जिन्दा हो ?" खैर! ज्यों-त्यो कर जेल कटी और 1906 के अन्त में आप बाहर आए।

सूफी जी का निज़ाम-हैदराबाद से घनिष्ट सम्बन्ध था। जेल से छूटते ही

आप वहां गए। निज़ाम ने उनके लिए एक अच्छा सा-मकान बनवाया। मकान बन जाने पर उन्होंने सूफी जी से कहा—"आपके लिए मकान तैयार हो गया है।" आपने उत्तर दिया—"हम भी तैयार ही गए हैं।" आपने वस्त्र आदि उठाए और पंजाब की ओर चल दिए। वहां जाकर आप 'हिन्दुस्तान' अखबार में कार्य करने लगे।

सुनते हैं, आपकी चतुरता, वाक्पटुता और समझदारी देखकर सरकार की ओर से एक हजार रुपया मासिक जासूस विभाग से पेश किए गए थे, परन्तु आपने उनकी अपेक्षा जेल और दरिद्रता को ही श्रेष्ठ समझा। बाद को 'हिन्दुस्तान' सम्पादक से भी आपकी न बनी और आपने वहां से भी त्यागपत्र दे दिया।

उन्ही दिनों सरदार अजीतसिंह ने 'भारतमाता-सोसाइटी' की नीव डाली और पंजाब के 'न्यूकालोनी बिल' के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सूफी जी का भी मेल उनसे बढ़ने लगा। उधर से वे भी इनकी ओर आकर्षित होने लगे।

सन् 1907 में पंजाब में फिर धर-पकड आरंभ हुई तो सरदार अजीतसिंह के भाई सरदार किशनसिंह और भारतमाता सोसाइटी के मन्त्री महता आनन्द किशोर सूफी जी के साथ नेपाल चल दिए। वहां नेपाल रोड के गवर्नर श्री जंग-बहादुर जी से आपका परिचय हो गया। वे इनसे बहुत अच्छी तरह पेश आए। बाद को श्री जंगबहादुर जी सूफी जी को आश्रय देने के कारण ही पदच्युत किये गए। उनकी सम्पत्ति भी ज़ब्त कर ली गई। खैर, सूफी जी वहा पकड़े गए और लाहौर लाये गए। लाला पिंडीदास जी के पत्र 'इंडिया' में प्रकाशित आपके लेखो के सम्बन्ध में ही आपपर अभियोग चलाया गया। परन्तु निर्दोष सिद्ध होने पर बाद में आपको छोड दिया गया।

तत्पश्चात् सरदार अजीतसिंह भी छूटकर आ गए और सन् 1908 में 'भारत माता बुक सोसायटी' की नीव डाली गई। इसका अधिकतर कार्य सूफी जी ही किया करते थे। आपने 'बागी मसीह' या 'विद्रोही ईसा' नामक एक पुस्तक प्रकाशित करवाई जो बाद को ज़ब्त कर ली गई।

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक पर अभियोग चलाया गया और उन्हें भी 6 वर्ष का कारागार मिला। तब 'देशभक्त मण्डल' के सभी सदस्य साधु बनकर पर्वतों की ओर यात्रा करने के लिए निकल पड़े। पर्वतों के ऊपर जा रहे थे। एक भक्त भी साथ आया। साधु बैठे तो उस भक्त ने सूफीजी के चरणों पर शीश नवाकर नमस्कार किया। बड़ा जटलमैन था। खूब सूट-बूट पहने था। सूफीजी के चरणों पर शीश रखा और पूछने लगा—"बाबा जी, आप कहां रहते हैं ?"

सूफी जी ने कठोर स्वर में उत्तर दिया—"रहते है तुम्हारे सिर में !"

"साधु जी, आप नाराज क्यों हो गए ?"

"अरे बेवकूफ, तूने मुझे क्यों नमस्कार किया ? इतने और भी तो थे ! इनको प्रणाम क्यो न किया ?"

"मैंने आपको ही बड़ा साधु समझा था।"

"अच्छा खैर ! जाओ, खाने-पीने की वस्तुएं लाओ।"

वह कुछ देर पीछे अच्छे-अच्छे पदार्थ लेकर आया। खा-पीकर सूफीजी ने उसे फिर बुलाया और कहने लगे—"क्यो बे, हमारा पीछा छोड़ेगा या नही ?"

"भला मैं आपसे क्या कहता हूं जी ?"

"चालाकी को छोड़। आया है जासूसी करने ! जा-जा, अपने बाप से कह देना कि सूफी पहाड़ में गदर करने जा रहे हैं।"

वह चरणो पर गिर पड़ा—"हुजूर, पेट की खातिर सब कुछ करना पड़ता है।"

आपने सन् 1909 में 'पेशवा' अखबार निकाला। उन्ही दिनों बंगाल में क्रातिकारी आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। सरकार को चिन्ता हुई कि कही यह आग पंजाब का भी दहन न कर डाले। अस्तु, दमन-चक्र चलना आरम्भ हुआ। तब सूफी जी, सरदार अजीतसिंह और ज्याउलहक ईरान चले गए। वहा पहुंचकर ज्याउल हक की सलाह बदल गई। उसने चाहा उन्हें पकड़वा दूं तो कुछ इनाम भी मिलेगा और सजा भी न होगी। परन्तु सूफीजी ताड़ गए। उन्होंने उसे आगे भेज दिया। वह वहा रिपोर्ट करने गया, स्वयं ही पकड़ा गया और यह दोनों बच निकले।

ईरान में वे कैसे रहे, *क्या हुआ, यह बातें तो किसी अवसर पर ही खुलेंगी,* परन्तु जो कुछ सुनने में आया, उसीका उल्लेख इस स्थान पर किया जाता है। ईरान में अंग्रेज़ों ने उनकी बहुत खोज की और उन्हें कई प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े। कहा जाता है कि वे एक स्थान पर घेर लिए गए। वहा से निकलना असंभव सा हो गया। वहीं व्यापारियों का एक काफिला ठहरा हुआ था। ऊंटों पर बहुत से सन्दूक लदे थे। उनमे वस्त्र आदि भरे थे। एक ऊंट के दोनो सन्दूकों मे सूफीजी तथा अजीतसिंह को बन्द किया गया और वहां से बचाकर निकाला गया।

फिर किसी अमीर के घर ठहरे। पता चल गया और वह घर घेर लिया गया। उसी समय उन दोनो को बुरका पहना, जनाने मे बिठा दिया गया। सब तलाशी ली गई और अन्त में स्त्रियों के बुरके उठाए भी गए, परन्तु मुसलमान लोग लड़ने-मरने को तैयार हो गए और फिर अन्य किसी स्त्री का बुरका नही उतारने दिया गया। इस तरह वे दोनों यहां से भी बच गए।

पीछे उन्होंने वहां से 'आबेहयात' नामक पत्र निकाला और राष्ट्रीय आन्दोलन में भी भाग लेने लगे। सरदार साहब के टर्की चले जाने पर वहा का सारा कार्य इन्ही के सर आ पड़ा और फिर ये वहा पर 'आका सूफी' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सन् 1915 में जिस समय ईरान में अंग्रेज़ों ने बिल्कुल प्रभुत्व जमाना चाहा तो फिर कुछ उथल-पुथल मची थी। शीराज़ पर घेरा डाला गया। उस समय सूफी जी ने बायें हाथ से रिवाल्वर चलाकर मुकाबला किया था, परन्तु अन्त में आप अंग्रेजों के हाथ आ गए। उन्हें कोर्ट मार्शल किया गया। फैसला हुआ, कल गोली से उड़ा दिए जाओगे। सूफी कोठरी में बन्द थे। प्रातः समय देखा, वे समाधि की अवस्था में थे, परन्तु उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। उनके जनाज़े के साथ असंख्य ईरानी गए और उन्होंने बहुत शोक मनाया। कई दिन तक नगर में उदासी-सी छाई रही। सूफी जी की कब्र बनाई गई। अभी तक हर वर्ष उनकी कब्र पर उत्सव मनाया जाता है। लोग उनका नाम सुनते ही श्रद्धा से सर झुका लेते हैं। वे पैर से भी लेखनी पकड़कर अच्छी तरह लिख सकते थे। उस दिन एक महाशय कह रहे थे कि मुझे उन्होंने पैर से ही लिखकर एक नुस्खा दिया था।

एक और विचित्र कहानी उनके मित्रों ने सुनाई थी। पता नहीं वह कहां तक सच है, परन्तु बहुत संभव है, वह सच हो। कहते हैं कि जब भोपाल या किसी और स्टेट में रेज़िडेण्ट कुछ खराबी कर रहे थे और उसके हड़प करने की चिन्ता में थे तो वहां का भेद प्रकाशित करने के लिए 'अमृत बाजार पत्रिका' की ओर से सूफीजी वहां भेजे गए। यह बात 1890 के लगभग की है।

एक पागल-सा मनुष्य रेज़िडेंट के बैरे के पास नौकरी की खोज में आया और अन्त में केवल भोजन पर ही रख लिया गया। वह पागल बर्तन साफ करता तो मिट्टी से लथपथ हो जाता। मुंह पर मिट्टी पोत लेता। वह सौदा खरीदने में बड़ा चतुर था। अस्तु, चीजें खरीदने उसे ही भेजा जाता था।

उधर 'अमृत बाजार पत्रिका' में रेज़िडेंट के विरुद्ध धड़ाधड़ लेख निकलने लगे। अन्त को वह इतना बदनाम हुआ कि पदच्युत कर दिया गया। जिस समय वह स्टेट से बाहर पहुंच गया तो एक जंकशन पर एक काला-सा मनुष्य हैट लगाए, पतलून-बूट पहने उसकी ओर आया। उसे देखकर रेज़िडेण्ट चकित-सा रह गया। यह तो वही है जो मेरे बर्तन साफ किया करता था। आज पागल नहीं है। उसने आते ही अंग्रेज़ी में बातचीत शुरू की। उसे देखकर वह कांपने लगा। अन्त में उसने कहा—"तुम्हें इनाम तो दिया जा चुका है, अब तुम मेरे पास क्यों आए?"

"आपने कहा था, जो मनुष्य उस गुप्तचर को, जिसने कि आपका भेद खोला है, पकड़वाए, उसे आप कुछ इनाम देंगे!"

"हां, कहा तो था। क्या तुमने उसे पकड़ा?"

"हां-हां, इनाम दीजिए। वह मैं स्वयं ही हूं।"

वह थर-थर कांपने लगा। बोला—"यदि राज्य के अन्दर ही मुझे तेरा पता चल जाता तो बोटी-बोटी उड़वा देता।"

खैर, उसने इन्हें एक सोने की घड़ी दी और कहा—"यदि तुम स्वीकार करो तो जासूस विभाग से एक हज़ार रुपया मासिक वेतन दिलवा सकता हूं।" परन्तु सूफी जी ने कहा—"अगर वेतन ही लेना होता तो तुम्हारे बर्तन क्यों साफ करता ?"

आज सूफी जी इस लोक में नहीं हैं, पर ऐसे देशभक्त का स्मरण भी स्फूर्तिदायक होता है। भगवान उनकी आत्मा को चिर शान्ति दें।

—अज्ञात

भाई रामसिंह

गांव तुलेतां, जिला जालंधर में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम श्री जीवनसिंह था। छोटी उमर में ही 1907 में आप कैनेडा चले गए थे। वहां पर उन्हें व्यापार आदि में अच्छी सफलता हुई और ये वहां के भारतवासियों में सबसे अधिक धनवान गिने जाने लगे। किन्तु इस पर भी आपका स्वभाव बड़ा सरल था और ये अपने धन को देश तथा जाति का धन कहा करते थे। दान देने में आप बड़े सिद्धहस्त थे। दीवान के लंगर आदि का खर्च इन्हीके रुपये से चला करता था।

सन् 1914 में कैनेडा स्थित भारतीयों को बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कामागाटामारू की घटना, व्यापार का मन्द पड़ जाना, गुरुद्वारे में दो नेताओं का मारा जाना आदि बातों ने परिस्थिति को एकदम बदल दिया। गुलामी की अधिक ठोकरें न सह सकने के कारण लोग देश की ओर वापस आने लगे। रामसिंह जी भी इसी विचार से कैनेडा से यूनाइटेड स्टेट्स आये। यहा आने पर लोगों ने भारत न आकर आपसे वहीं ठहरकर कार्य करने का आग्रह किया।

उन दिनों गदर पार्टी का कार्य पं० रामचन्द्र नामक व्यक्ति के हाथ में था। इन्होंने नियमो आदि को एक ओर रख, पार्टी पर अपना ही व्यक्तित्व जमा रखा था। सारा काम इन्ही की इच्छा मात्र पर निर्भर था। इनको सदा यही चिन्ता रहती की कोई अच्छा काम करने वाला अमेरिका में न ठहरने पाये। अस्तु, इसी विचार से रामसिंह को भी वहां से निकालने की आपने एक चाल चली। एक जूते में एक कागज सीकर रामसिंह को देते हुए कहा—"इसे भारत मे अमुक व्यक्ति के पास ले जाना है। यह इतना जरूरी है कि आपके सिवा और किसीपर विश्वास नही किया जा सकता।" अस्तु, आप भारत चल दिए। आते समय मनीला मे कुछ और पुराने कार्यकर्त्ताओ से भेंट हुई। उन्होंने रामचन्द्र का असली स्वरूप बताकर यह भी कहा कि इस समय भारत जाना मृत्यु के मुंह मे जाना है। बूट खोलने पर उसमे साधारण छपे कागज के सिवा और कुछ न निकला। अस्तु, आप चीन, जापान होते हुए फिर अमेरिका वापस चले गए।

इस समय रामचन्द्र तथा अन्य लोगों में काफी झगड़ा बढ़ गया था। बहुत कुछ प्रयत्न करने के बाद भी झगड़ा मिटने की कोई आशा न देख, आपने सन् 1916 में कैलिफोर्निया के सैक्रोमेण्ट नामक शहर मे एक मीटिंग की और नये अधिकारी चुनकर पार्टी का काम आरम्भ कर दिया। रामचन्द्र ने इसे अनियमित कहकर एक और सभा बुलाई, किन्तु इसने भी उसी रामसिंह वाली कमेटी को ही

सर्वोपरि मानकर उसमें तीन आदमी और बढ़ा दिए। और यह भी निश्चय किया कि सात दिन के अन्दर ही पुराने लोग इस नई कमेटी को सारे काम का चार्ज दे दें। और यदि ऐसा न हो तो कमेटी बलपूर्वक सब चीजों पर अधिकार कर ले। किन्तु इतने पर भी चार्ज न मिला। प्रेस पर अधिकार करते समय वे लोग पुलिस को बुला लाए। पुलिस के आने पर रार्मासह ने सब हाल बयान किया। आखिर वह एक स्वाधीन देश की पुलिस थी। अस्तु उन लोगों ने स्वयं ताला तोड़कर प्रेस पर नई कमेटी का अधिकार करा दिया।

इसके बाद चारों ओर घूम-घूमकर आपने संगठन का कार्य भी समाप्त किया। उस समय लोगों ने आपको सेण्ट्रल कमेटी का प्रधान बनाना चाहा, किन्तु यह कहकर कि मैंने ही उसे बनाया है और मैं ही इसका मुखिया बन बैठूं; यह ठीक नहीं, आपने उक्त पद को स्वीकार न किया। किन्तु फिर भी आपका सारा समय इसी कार्य में व्यतीत होता रहा।

इसी बीच अमेरिका ने भी महायुद्ध में भाग लेने का एलान कर दिया और साथ ही गदर पार्टी के खास-खास कार्यकर्त्ताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया। कहा गया था कि इन लोगों के कारण ही ब्रिटिश के प्रति अमेरिका की निष्पक्षता मे अन्तर आ गया था। खैर, जो भी हो, रार्मासह जी इसी अपराध में गिरफ्तार हुए। कुछ ही दिनों बाद पंडित रामचन्द्र भी पकडे गए। उस समय आपने पंडित जी से कहा कि बाहर हमारा जो भी मतभेद रहा हो, यहां पर हमें एकसाथ मिलकर ही चलना ठीक होगा। किन्तु वे इसपर राजी न हुए और अन्त में यही बात अधिक ज़ोर पकड़ गई। अभियोग चलने पर समाचार पत्रों ने इस बात को लेकर कि रामचन्द्र की पार्टी ने ऐसा कहा और दूसरी पार्टी ने ऐसा कहा, खूब लेख आदि लिखना आरम्भ कर दिया। पार्टी की बदनामी होते देख, रार्मासह ने एक बार फिर प्रयत्न किया कि पार्टीबन्दी दूर हो जाये और सब लोगो का अभियोग एक ही साथ चले, किन्तु इस बार भी सफलता न हुई।

केस जूरी को सौंपा गया और जिस समय जज लोग दोपहर का खाना खाने गए तो रार्मासह ने अदालत मे ही रिवाल्वर निकालकर रामचन्द्र पर फायर कर दिया। जिस समय रामचन्द्र को गिरता देख आपने हाथ नीचा कर लिया था, बीच सामने बैठेहुए कोतवाल ने रार्मासह पर गोली चला दी। इस प्रकार अमेरिका के अदालत में होने वाले एक और शहीदी अभिनय का दृश्य समाप्त हुआ।

इस बात की तह में कुछ भी रहा हो, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि रार्मासह ने यह काम गदर पार्टी की बदनामी न सह सकने के कारण ही किया था।

—भानु

श्री भानसिंह

फांसी पर चढ़कर प्राण देने वाले विप्लवी यदि देश के लिए गौरव की वस्तु है, तो उन लोगों का महत्त्व भी किसी तरह कम नही, जो आततायियों द्वारा निरन्तर अकथनीय यातनाएं सहन करते हुए, तिल-तिलकर प्राण देते हैं। उनका नाम जन-साधारण नही जान पाते, उनका गुप्त कार्य ही महत्त्वपूर्ण होता है और उन्हीं का बलिदान अधिक महिमामय हुआ करता है।

ऐसे ही हमारे नायक श्री भानसिंह भी थे। आपका जन्म सुनेत नामक गाव, जिला लुधियाना मे हुआ था। पहले आप एक रिसाले मे भरती हुए थे, किन्तु बाद में नौकरी छोड़कर अमेरिका चले गए थे। कैलीफोर्निया मे रहकर सन् 1911 के सभी राजनैतिक कार्यो मे आप बढ-चढकर भाग लेने लगे थे।

शेष वही पुरानी कथा है। गदर दल बना, गदर अखबार निकला, संगठन हुआ और अन्त मे महायुद्ध के छिड़ते ही लोग देश को लौटने लगे। सबसे प्रथम कोरिया तथा तोशामारू जहाज आ गए थे। उन्हीमे आप भी चल दिए। आते ही इमिग्रेण्ट्स आर्डिनेन्स के शिकार बन गए। मार्ग में आप गदर का प्रचार करते आए थे। अस्तु 29 अक्तूबर, 1914 को आप कलकत्ते पहुचते ही पकड़ लिए गए। नवम्बर के अन्त तक माण्टगुमरी जेल में बंद रखे जाने के बाद एक दिन आप छोड दिए गए। इसपर कुछ साथी आपपर सन्देह करने लगे, किन्तु आपने अपनी तत्परता से फिर सबपर अपना विश्वास जमा लिया। कार्य जारी रहा और अन्त मे बना-बनाया खेल बिगड़ गया। विप्लव आयोजन के विफल होते ही चारो ओर गिरफ्तारियों का बाजार गर्म हो उठा। हमारे नायक पर डकैती अथवा हत्या का कोई दोष सिद्ध न होने पर भी, उन्हे आजन्म कालेपानी का दण्ड मिला।

आप अन्दमान लाए गए। यहां के जेलर तथा अन्य अधिकारियो को अपनी हृदयहीनता पर विशेष गर्व था और परिणामस्वरूप कैदियो और अधिकारियों में सदैव ही झगडा चला करता था। एक बार कोई उत्सव था। उस दिन मिठाई बंटी। राजनैतिक कैदियों को भी पेश की गई। कुछेक सज्जन मिठाई खा गए। श्री भानसिंह जी ने उन्हे आड़े हाथों लिया, बहुत नाराज हुए। विप्लवपंथियो के गंभीर प्रेम के कारण ही वे इस प्रकार अपने सहकारियो पर क्रुद्ध हुए थे और उन्होने चुपचाप सब सहार लिया था। सभी ने क्षमा चाही। इस बात का पता अधिकारियों को लगा। आपको किसी अधिकारी ने गाली दे दी। आप यह सहार न सके। उस दिन कोठरी में बंद होने के कारण सबकुछ चुपचाप सहना पड़ा। अगले दिन से आपने काम करने से इन्कार कर दिया। इसपर जेलर ने 6 महीने

के लिए डंडा-बेड़ी पहनाकर कालकोठरी में बन्द कर दिया, साथ ही आधी खुराक की सज़ा भी दे दी। आधी खुराक वाले को पानी भी पर्याप्त नहीं दिया जाता था। उस ग्रीष्म जलवायु वाले द्वीप मे यह दण्ड कितना असह्य होता है, यह हम लोग क्या अनुभव करेंगे!

न जाने किस नशे में मस्त होकर ये विप्लवी इन सब अकथनीय कष्टो को हंसी-खुशी सहार लेते हैं! किस उच्च भावना से इस योग्य हो पाते हैं कि अपने जीवन का कोई आराम भी उन्हे प्रलोभित कर पथभ्रष्ट नहीं कर पाता। 40 वर्ष से अधिक आयु वाले भानसिंह उस ग्रीष्म ऋतु मे अल्प आहार और अल्प जल के दण्ड को भी हंसी-खुशी से सहार गए। उस वीर को प्रेम का नशा पागल बनाए रहता था। एक दिन आपने गाना शुरू कर दिया—"मित्तर प्यारे नू हाल मुरीदां दा कहना!" जेलर ने चुप रहने की आज्ञा दी। परन्तु ईश्वर-भजन से भी वंचित करने का अधिकार उसे किसने दिया? भानसिंह अब उसकी आज्ञाएं क्यो मानने लगे! उन्होंने अपना आलाप जारी रखा। आप दूसरी मंज़िल की कोठरी में बंद थे। अब उन्हें तीसरी मंज़िल की कोठरी में बद किया गया। कोठरी क्या थी, एक खासा तग संदूक था। ढाई वर्ग फीट की कोठरी ही क्या हो सकती है! किन्तु आलाप फिर भी बंद न हुआ। निर्दय अधिकारियों ने इस बार आपको बुरी तरह पीटा। हड्डियां तोड़ डालीं। परन्तु इससे क्या होता था? राजनैतिक कैदियो के साथ किए जाने वाले यह अमानुषिक अत्याचार उनके लिए असह्य थे और उन्हीं से प्राण त्यागकर वे एक प्रभावशाली आन्दोलन खडा करना चाहते थे।

गान का शब्द बद न होता देख, अधिकारी फिर मारने गए। इस बार शेष दल को भी पता चल गया। रोटी खाने का समय था। सभी उस कोठरी की ओर भागे। परन्तु बारकों के द्वार बंद कर दिए गए और भीतर उस नररत्न को बुरी तरह पीटा गया। आज वह शेर पिंजरे मे बद था, ज़ंजीरों से जकड़ा हुआ था! सब सहन करना पडा। जो वीर बड़े उत्साह से देश के स्वातंत्र्य-संग्राम में भाग लेने के विचार से आया था, वही आज निष्फल हो, बन्दी बनकर, इस तरह पिट रहा था! उस समय उनके हृदय पर क्या गुज़रती होगी, यह हम लोग क्या समझेंगे! अन्त मे उन्हें वही आधी खुराक, कालकोठरी और डंडा-बेड़ी की सज़ा मिली। अन्य कैदियों ने भी कार्य छोड़ दिया और उन्हें भी वही सज़ा दी गई।

भानसिंह जी को बुरी तरह पीटा गया था। दशा नाज़ुक हो गई थी। मुह में पानी न जाता था। बचने की कुछ भी आशा न थी। जेल के अन्दर उनकी मृत्यु न हो, इसलिए उन्हें बाहर के अस्पताल में भेज दिया गया, वहां कुछेक दिन के बाद श्री भानसिंह जी अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दूर अपने 'मित्तर प्यारे' के पास 'मुरीदां दा हाल' कहने चले गये।

—धनेष

श्री यतीन्द्र मुकर्जी

बंगाल के पवना नामक स्थान में एक ब्राह्मण परिवार मे उनका जन्म हुआ था। बाल्यकाल से ही शारीरिक व्यायाम, दौड़-धूप तथा कुश्ती आदि की ओर उनकी विशेष रुचि थी। घोड़े की सवारी भी वे अच्छी तरह जानते थे। उनका एक अपना घोड़ा था जिसे वे बहुत प्यार करते थे। उनके जीवन की अनेक घटनाओं के साथ इस घोड़े का भी बहुत सम्बन्ध है।

पढ़ने-लिखने की ओर आपकी कुछ अधिक रुचि न थी। अस्तु, मैट्रिक पास करने के बाद कुछ दिन कालेज में पढ़कर उन्होंने 30 रु० मासिक पर एक आफिस में नौकरी कर ली। सेनानायक के प्राय: सभी गुण उनमे विद्यमान थे। उनको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान ने उन्हें मनुष्यों का नेता बनाकर ही यहां भेजा था। उनका शरीर बहुत ही सुन्दर तथा सुडौल था और वे स्वभाव से ही बड़े निर्भीक थे।

जिस समय पूर्व बंगाल की अनुशीलन समिति और चन्द्रनगर का रासबिहारी का दल मिलकर भारत में विप्लव की आयोजना कर रहा था, ठीक उसी समय बंगाल के एक दूसरे कोने में यतीन्द्रनाथ की अध्यक्षता में एक और दल भी काम कर रहा था। उस समय इस दल का उपरोक्त दोनो दलों से कोई सम्बन्ध न था।

पंजाब में 21 फरवरी, 1915 को विप्लव होने की बात सुनकर आप बनारस आए और रासबिहारी से मिले। उस समय रासबिहारी के पास धन की कमी थी। आपने इसी कमी को पूरा करने का भार अपने सिर लिया। कहते हैं कि एक ही महीने में उन्होंने इतना रुपया एकत्रित कर लिया था जिससे कई वर्ष तक गदर का कार्य निर्विघ्न रूप से चल सकता था।

एक दिन आप कलकत्ते के एक मकान में अपने कुछ और साथियों के साथ ठहरे हुए थे कि एक व्यक्ति ने, जिसपर ये लोग संदेह करते थे, उन्हें पहचान लिया। अस्तु, एक युवक ने उसके गोली मार दी। इस घटना के कारण सबको मकान छोड़कर भागना पड़ा। जिस व्यक्ति के गोली लगी थी, उसने अपने मरते समय के 'इज़हार' (डाइंग डिक्लेरेशन) में यतीन्द्र को ही अपनी हत्या का अपराधी बताया। एक तो यो ही पुलिस बुरी तौर से आपकी तलाश मे थी, तिसपर इस घटना ने रही-सही कमी को भी पूरा कर दिया। यतीन्द्र के सिर फांसी का परवाना लटकने लगा।

परिस्थिति भयानक होते देख उनके साथियों ने उनसे विदेश चले जाने का आग्रह किया। उस समय उस भावुक वीर ने करुणा भरे स्वर में कहा—"भाई !

हम लोग जीवन-मरण में एक-दूसरे का साथ देने की शपथ लेकर ही घरों से बाहर हुए थे। अस्तु, बाकी साथियों को विपत्ति के मुख में छोड़कर मैं अकेला विदेश न जा सकूंगा। वहा जाकर सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने की अपेक्षा मुझे तुम लोगों के साथ भूख-प्यास से तड़प-तड़पकर मरने मे ही विशेष आनन्द है। कलकत्ते मे अब और अधिक ठहरना निरापद न जानकर, बालेश्वर के निकट एक स्थान पर नया केन्द्र स्थापित किया गया और यतीन्द्र चार आदमियों के साथ वही पर रहकर विप्लव का कार्य करने लगे।

इसी बीच कलकत्ते मे कुछ और धर-पकड़ हुई और यतीन्द्र के इस नये स्थान का पता भी पुलिस को लग गया। जिस समय यतीन्द्र को इस बात का पता लगा तो उनके दो साथी बारह मील दूर एक जंगल में थे। यदि वे चाहते तो उस समय अपने प्राणों की रक्षा कर सकते थे, किन्तु असाध्य साधन ही उनके जीवन का व्रत था। अस्तु, दो और साथियों सहित उन दोनों को लेने के लिए चल दिए। अंधेरी रात मे पहाड़ों के ऊंचे-नीचे रास्ते से होकर बारह मील जंगल मे जाकर फिर वापस आना उन्हींके साहस की बात थी।

पुलिस वालों ने गावों में चारों ओर कह रखा था कि जंगल में कुछ भयानक डाकुओं का एक दल छिपा है और उसे पकड़वाने में उन्हें सहायता करनी पड़ेगी। मार्ग मे भी स्थान-स्थान पर पुलिस की चौकिया बिठला दी गई थी।

यतीन्द्र को अपने साथियो तक पहुंचते न पहुंचते दिन निकल आया और वे बस्ती के बीच से होकर बालेश्वर की ओर चल दिए। दिन-रात चलते रहने के कारण दो दिन से कुछ भी खाने को न मिला था, तिसपर ग्रीष्म की दोपहरी और भी परेशान कर रही थी। मार्ग में एक नदी के किनारे मल्लाह से कुछ चावल पका देने को कहा। किन्तु हिन्दू धर्म का पोषक, ब्राह्मणभक्त मांझी ब्राह्मण को अपने हाथ का भात खिलाकर अपने लिए नरक का द्वार खोलने पर किसी भांति भी राज़ी न हुआ। उसके निकट ब्राह्मण की प्राण-रक्षा का कोई भी मूल्य न था।

यतीन्द्र के इस ओर आने का समाचार भी पुलिस से छिपा न रहा। जिस समय वे एक गाव से दूसरे गाव मे भागते फिर रहे थे तो एक दिन संध्या समय बालेश्वर के पास जंगल मे अपने चारो साथियो सहित घिर गए। युद्ध का सारा सामान साथ लेकर ज़िला-मजिस्ट्रेट तथा पुलिस सुपरिटेंडेंट जंगल के दोनों ओर से सर्च-लाइट छोड़ते हुए उनका पीछा करने लगे। इस लुका-छिपी मे सारी रात समाप्त हो गई। प्रात.काल होने पर बचने की कोई भी संभावना न देख, उन लोगों ने सामने-सामने लड़कर प्राण देना ही ठीक समझा।

निश्चय करने भर की देर थी। एक ओर युद्ध के सारे सामान से सुसज्जित हज़ार से भी अधिक गाव वाले तथा पुलिस के लोग थे और दूसरी ओर थे, भूख, प्यास, अनिद्रा और मार्ग की थकान से परेशान केवल पाच विप्लवी। दोनों ओर से गोली

चलने लगी। वायुमंडल बारूद के धुंए से भर गया। ये लोग ऊंची-नीची ज़मीन पर लेटकर गोलियां चलाने लगे। किन्तु भूख-प्यास से व्याकुल पांच विप्लवी कब तक पुलिस का सामना कर सकते थे! प्रायः सभी लोग घायल हो चुके थे कि एक गोली ने चित्तप्रिय को सदा के लिए धराशायी बना दिया। यतीन्द्र भी बुरी तरह घायल हो चुके थे। गोलियां भी समाप्त होने पर थीं। अस्तु, उन्होंने आग्रहकर शेष तीनों साथियों से आत्मसमर्पण करा दिया।

यतीन्द्र अवसन्न होकर गिर पड़े। प्यास से उनका गला सूखने लगा। खून से तर-बतर बालक मनोरंजन पास में पड़ा था। यतीन्द्र के क्षीण स्वर से पानी का शब्द सुनकर मनोरंजन पास के सरोवर से चादर भिगोने चल दिया। यह देखकर पुलिस अफ़सर की आंखों में भी आंसू आ गए। उसने मनोरंजन से बैठने के लिए कहा और स्वयं अपनी टोपी में पानी लाकर यतीन्द्र के मुख मे डालने लगा। बाद में कटक के अस्पताल में पहुंचकर रणचण्डी के परम उपासक वीर यतीन्द्र ने अपने प्राण त्याग दिए। उस समय पुलिस कमिश्नर मि० टेगार्ट ने कहा था—

"दो आई हैड टु डू माई ड्यूटी, बट आई हैव ए ग्रेट रिस्पेक्ट फार हिम. ही वाज दि ओनली बेंगाली हू गेव हिज़ लाइफ ह्वाइल फाइटिंग फेस टु फेस विद दि पुलिस।"

यह घटना 9 सितम्बर 1915 की है।

अन्त में मनोरंजन तथा नीरेन्द्र को भी फांसी की सज़ा हुई और ज्योतिप को आजन्म कारागार का दण्ड दिया गया। बाद में जेल के कष्टों से वे पागल हो गए और कुछ दिन बहरमपुर के पागलखाने में रहने के बाद वे भी अपने उन्ही चारों साथियों के पास चले गए।

—एक युवक

श्री नलिनी वाक्च्य

पंजाब का विराट विप्लवायोजन विफल हो जाने के बाद भी विप्लवी एकदम निराश नहीं हुए। जो लोग उस समय की धर-पकड़ से बच गए थे, उन्होंने फिर नये सिरे से उस महान यज्ञ की आयोजना प्रारम्भ कर दी। बिहार में संगठन की कमी थी। अस्तु, वीरभूमि के श्री नलिनी वाक्च्य को भागलपुर के कालेज में पढने के लिए भेजा गया। यहां आकर नलिनी एक पूरा बिहारी बन गया। सर के लम्बे-लम्बे बाल कटाकर उन्होंने टोपी पहननी शुरू कर दी। एक मोटे कपडे का कुर्ता तथा फेटदार धोती बाधकर वे उस कालेज मे अपने दिन बिताने लगे। इतना सब करने पर भी आप पुलिस की निगाह से बच न सके और विवश हो, उन्हें कालेज छोड़कर फिर बंगाल वापस जाना पडा। सन् 1917 के दिन थे। बंगाल में उस समय भी चारों ओर धर-पकड जारी थी। अस्तु, यहां पर भी अधिक समय तक उनका ठहरना न हो सका। परिस्थिति अधिक भयानक होते देख, कुछ दिनो के लिए कार्य को स्थगित कर, चुने-चुने कार्यकर्ताओं को किसी सुरक्षित स्थान पर रख देने की बात निश्चित की गई। नलिनी अपने चार साथियों को साथ लेकर गोहाटी में एक किराए के मकान में रहने लगे। सोते समय रिवाल्वर भरकर तकिए के नीचे रख लेते और बारी-बारी एक आदमी खिड़की मे बैठकर पहरा दिया करता।

अभी अधिक दिन न बीते थे कि किसी ने पुलिस को पता दे दिया कि अमुक मकान में कुछ बंगाली युवक रह रहे है। बस, दूसरे ही दिन प्रातःकाल मकान घेर लिया गया। पहरे वाले युवक ने चुपके से और साथियों को जगा दिया, और सब लोग नीचे आकर पुलिस पर गोलियां बरसाने लगे। पुलिस को इस प्रकार के आक्रमण का लेश मात्र भी ध्यान न था। अस्तु, सब के सब तितर-बितर हो गए, और ये लोग भागकर पास की पहाड़ी पर जा पहुंचे।

तीसरे पहर का समय था। एकदम हज़ारों सशस्त्र सिपाहियों से पहाडी घिर गई। एक बार फिर बन्दूक तथा पिस्तौलों की आवाज़ से आकाश गूज उठा। किन्तु, इतनी सेना के सामने ये इने-गिने युवक कब तक ठहर सकते थे! अस्तु, दो को छोड़कर शेष सभी वही पर मारे गए। बचे हुए दोनों युवक किसी प्रकार आंख बचाकर निकल गए।

सात दिन पहाड़ी पर बिना खाए-पिए घूमते रहने से नलिनी के अंग शिथिल होने लगे थे कि इसी बीच एक पहाड़ी कीड़ा भी इनके चिपक गया। नलिनी वहां से पैदल ही फिर बिहार पहुंचे, किन्तु वहां पर पहले ही से आपकी तलाश हो रही

थी, अस्तु बिहार से भी आपको भागना पड़ा ।

बंगाल में हावड़ा स्टेशन पर पहुंचकर आपको कोई भी साथी न मिला। शरीर बिल्कुल कमज़ोर हो चुका था। दो सप्ताह से खाना तो क्या, अन्न के दर्शन भी न हो पाए थे। पहाड़ी कीड़ा अब भी उसी भांति चिपका था। अस्तु, उसके विष के कारण आपको ज्वर भी आने लगा। पास में भरा हुआ रिवाल्वर है। चलने की शक्ति नहीं। पैसे के नाते बिल्कुल सफाया। अब करें तो क्या करें ? निराश हो नलिनी किले के मैदान में एक वृक्ष के नीचे पड़ रहा।

दो दिन इसी प्रकार और बीत जाने पर प्रसंगवश उनका एक साथी उधर से आ निकला। विष के अधिक फैल जाने से उनके अब चेंचक भी निकल आई थी। साथी उनकी यह दशा देखकर रो पड़ा। घर पर उठा तो ले गया, किन्तु अब इलाज कैसे हो ? नलिनी को बाहर ले जाना मौत को निमंत्रण देना था। अस्तु, साथी ने उनके शरीर पर हल्दी मिलाकर मट्ठे की मालिश करनी शुरू कर दी और छाछ भी उन्हें पीने को देने लगा।

भगवान की लीला बडी विचित्र है ! नलिनी इसीसे चंगा होने लगा और जिस दिन दोनों ने एकसाथ बैठकर भोजन किया तो, उसी साथी के शब्दों में, उसके आनन्द की सीमा न रही। स्वस्थ हो जाने पर दोनों फिर काम पर निकले। संयोगवश घर से बाहर होते ही उक्त साथी गिरफ्तार हो गया।

हमारे नायक ने हावड़ा में एक मकान किराये पर लिया और उसीमें तारिणी मजूमदार के साथ रहने लगे। अभी चैन से बैठने भी न पाए थे कि फिर पुलिस के घेरे में आ गए। दोनों साथियों ने बाहर आकर फिर सामना करना शुरू कर दिया। कुछ देर तक दोनों ओर से गोली चलने के बाद तारिणी वीरगति को प्राप्त हुआ। नलिनी के भी गोली लग चुकी थी, किन्तु उसके अरमान अभी पूरे नहीं हुए थे। अफसर ने सामने आकर कहा—"आत्मसमर्पण कर दो।" उत्तर में नलिनी के रिवाल्वर की गोली से साहब की टोपी नीचे जा गिरी। इस बार एक धड़ाके की आवाज के साथ ही नलिनी भी ज़मीन पर आ गिरा।

वीर के गिरते ही उसे गिरफ्तार कर लिया गया। पास में ही घोड़ा-गाड़ी खड़ी थी, नलिनी झूमता हुआ उसीमें सवार हो गया।

अस्पताल के कमरे में नलिनी एक खाट पर पड़ा है। चारों ओर पुलिस अफसरों का जमाव है।

'नाम क्या है ? कहां के रहने वाले हो ? पिता क्या करते हैं ? तुम्हें मरने से पहले अंतिम बयान (डाइंग डिक्लेरेशन) देना होगा।' आदि बातों के कहे जाने पर वीर ने धीरे से कहा—

"डोंट डिस्टर्ब मी प्लीज, लेट मी डाई पीसफुली;" अर्थात्—तंग न करो, कृपाकर मुझे शान्ति से मरने दो।

'अन-ऑनर्ड, अनसंग और अनवेप्ट' जाने का कितना ज्वलन्त उदाहरण है ! जीवन भर संकटों के साथ खेलकर अन्त समय भी उसकी यही इच्छा है कि कोई उसे न जाने, कि वह कौन था और कैसे मर गया। अपने मूल्य को छिपाकर अननोन एण्ड अनलेमेंटिड† ही वह जाना चाहता था। अस्तु, 15 जून, 1918 को मां का एक और पागल पुजारी उसकी गोद से सदा के लिए छिन गया।

—सूर्यनाथ

†जिसके बारे में कुछ भी जानकारी न हो और जिसकी मृत्यु पर तनिक भी शोक न प्रकट किया जाए।

श्री ऊधमसिंह

अमृतसर ज़िले के कर्सल नामक गांव में ऊधमसिंह का जन्म हुआ था। विप्लव-पन्थी प्राय: जीवन के अन्तिम समय में ही संसार के सामने आते हैं। अस्तु, ऊधम सिंह के बाल्यकाल की बातें जानी न जा सकी। केवल इतना ही पता है कि व्यवसाय के सम्बन्ध में वे अमेरिका चले गए थे और वहीं पर 'गदर' अखबार द्वारा भारत के स्वाधीनता-युद्ध की घोषणा की गई तो आप भी उसी में शामिल हो गए। सन् 1914 मे महायुद्ध के छिड़ते ही अमेरिका-निवासी भारतीयो ने देश को वापस आना शुरू कर दिया। एक दिन अमेरिका से आने वाले एक जहाज के भारतीय तट पर लगते ही उसके 350 भारतीय यात्रियों में से सबके सब गिरफ्तार कर लिए गए। भारत मे जन्म लेकर वहीं के अन्न-जल से पले हुए इन कतिपय भारतीयों को अपने ही देश की स्वच्छन्द जलवायु से वंचितकर, सरकार ने पंजाब की विभिन्न जेलों में घुट-घुटकर प्राण देने के लिए बन्द कर दिया। इन 350 यात्रियों में हमारे नायक ऊधमसिंह भी थे।

सन् 1915 के अप्रैल मास में पंजाब में विराट विप्लवायोजन के विफल हो जाने पर लाहौर प्रथम षड्यन्त्र के नाम से अभियोग चलाया गया। आखिर न्याय ही तो ठहरा, जो ऊधमसिंह भारत की भूमि पर पैर रखने से पहले ही गिरफ्तार कर लिये गए थे, उन्हें भी इस मामले मे घसीटकर लाया गया। अदालत से आजन्म कालेपानी का दण्ड मिलने पर कुछ साल तक अण्डमान जेल में रखने के बाद, 1921 के अन्त में आपको मद्रास की वेलारी जेल लाया गया। पंजाब के अन्य राजनैतिक कैदियों से अलग एक दूसरे अहाते की सुनसान कोठरी में अकेले रहकर ऊधमसिंह जीवन के दिन बिता रहे थे कि एक दिन जब प्रातःकाल अधिकारियों ने आकर उनकी कोठरी में देखा तो ऊधमसिंह गायब थे। चारों ओर खोज-खबर होने लगी, किन्तु बहुत कुछ दौड़-धूप के बाद भी न तो किसीको ऊधमसिंह का ही पता लगा और न कोई यह समझ सका कि कोठरी का ताला ज्यों का त्यों बन्द रहने पर भी वे पुलिस की कड़ी निगरानी से कब, कैसे और किधर से निकल गए।

ऊधमसिंह जेल से निकलकर काबुल पहुंचे, किन्तु किसी कवि के कथनानुसार "बुरी होती है लौ लगी दिल की"। अस्तु, उन्हे वहां चैन न आया और वे फिर भारत आ गए और कुछ दिन काम करने के बाद फिर वापस चले गए। इधर पुलिस को भी आपके बिना चैन न था। ज़ोरों के साथ तलाश होने लगी और नोटिस भी निकाला गया। कई बार मौत के मुंह में आकर सकुशल निकल जाने

के बाद एक दिन जब आप फिर भारत आ रहे थे, तो सरहद पर उन्हें गोली मार दी गई और वे फिर देश को वापस न आ सके। गोली किसने मारी, यह आज तक राज़ की बात है।

—पंचम

श्री खुशीराम

सन् 1919 का वर्ष भी भारत के इतिहास में अमर रहेगा। युद्ध के पुरस्कार में रौलट-ऐक्ट पाने पर देश में एक विराट आन्दोलन उठ खडा हुआ, जिसके परिणाम मे जलियानवाला और मार्शल-ला तक की नौवत आ गई। उस समय लोग बहुत त्रस्त हो उठे थे। एकाएक ऐसी कठोरता उनपर होगी, यह वे न जानते थे। परन्तु उस त्रस्त समय में भी हमारे नायक श्री खुशीराम जी जैसे वीर अपनी जान पर खेलकर अपना नाम अमर कर गए।

आप एक निर्धन परिवार में 27 श्रावण, सम्वत् 1957 मे पैदा हुए थे। पिता का नाम लाला भगवानदास था। जाति के अरोड़ा थे। जन्म के थोड़े ही दिनों बाद पिता का देहान्त हो गया था। आपका जन्म-स्थान पिण्डी-सैदपुर, जिला झेलम था। पिता की मृत्यु के बाद लाहौर नवाकोट के अनाथालय में आपका पालन-पोषण हुआ। आपका शरीर बहुत सुन्दर तथा सुदृढ़ था। बहुत शक्तिशाली थे। जन्म पर जन्म-पत्री लिखने वाले पंडित ने कहा था, यह बालक हाथी की तरह बलवान होगा और इसका नाम अमर हो जाएगा। उस समय आपका नाम भीमसेन रखा गया था, परन्तु बाद मे खुशीराम नाम से ही वे प्रसिद्ध हुए।

आप डी० ए० वी० कालेज लाहौर के विद्यार्थी थे। 1919 मे 19 वर्ष की आयु मे शास्त्री की परीक्षा देकर छुट्टियों का उपभोग करने जम्मू चले गए थे। इधर 30 मार्च के बाद 6 अप्रैल को समस्त भारत में हड़ताल की बात थी। अस्तु, आप उधर न ठहर, तुरन्त लाहौर आ गए और कालेज विद्यार्थियों के जुलूसों का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया।

12 अप्रैल को लाहौर की बादशाही मस्जिद में एक विराट सभा हुई। असंख्य लोगों का जमाव था, व्याख्यान हुए और खूब जोश बढ़ा। सभा विर्सजित हुई और लोग शहर की ओर जुलूस की शक्ल में चल दिए। झंडा हमारे नायक के हाथ में था। कोई एक फर्लांग के अन्तर पर ही हीरामंडी बाजार है। यहीं से वे नगर में घुसना चाहते थे। आगे फौज खड़ी थी। उस समय सेना की कमान नवाब मोहम्मद अली (बरकत अली) के हाथ में थी। आज्ञा हुई, सब लोग बिखर जाओ। जुलूस न निकलने दिया जाएगा। जुलूस के नेता श्री खुशीराम ने कहा—"जुलूस निकलेगा और जरूर निकलेगा, और जाएगा भी इसी मार्ग से।" नवाब ने आकाश में गोली चलवाई। लोग डर के मारे इधर-उधर भागने लगे, तब सिंह की तरह गरजकर खुशीराम ने कहा—"भागकर खाहमखाह कायर क्यों बनते हो? मरना तो एक ही दिन है। फिर वीरों की तरह क्यों न मरो! बड़ी लज्जा की बात

है कि आज गीदड़ों की तरह भागकर जान बचाने की फिक्र में उठते-पड़ते भाग रहे हो। तुम लोगों को शर्म आनी चाहिए।" आदि-आदि। लोग रुक गये। नवाब ने फिर कहा—"जुलूस मुन्तशिर कर दो।" खुशीराम उसी तरह गरजकर बोले, "न, यह न होगा। हमारा जुलूस इसी तरह चलेगा।" वे आगे बढ़े और उधर से गोली चली, वे और आगे बढ़े। इस तरह एक-एक करके सात गोलियां छाती में समा गईं, परन्तु वह वीर उसी तरह आगे बढ़ता चला गया। आठवीं गोली माथे में दाईं ओर, नवीं बायीं ओर लगी। अब संभलना मुश्किल हो गया और वे अनन्त निद्रा में सो गये और फिर न उठे।

उस दिन उनके शव के साथ लोगों का समुद्र ही उमड़ आया था। तत्कालीन समाचार-पत्रों की रिपोर्ट थी कि उन लोगों की संख्या पचास हज़ार से भी अधिक थी।

खुशीराम अमरत्व प्राप्त कर गये। वे आज इस संसार में नहीं हैं परन्तु उनका नाम, कार्य और साहस आज भी जीवित है।

—एक दर्शक

श्री गोपीमोहन साहा

तरुण तपस्वी आ, तेरा
कुटिया में नव स्वागत होगा।
दोपी तेरे चरणों पर
फिर मेरा मस्तक नत होगा।

सब प्रकार के उपायो मे असफल हो जाने पर क्रान्तिकारी दल को छिन्न-भिन्न करने के लिए बंगाल सरकार ने आर्डिनेन्स की शरण ली थी। मनमानी गिरफ्तारिया होने लगी। जिसको चाहा, पकडकर अनिश्चत समय के लिए जेल मे फेंक दिया। न कोई सबूत की आवश्यकता थी और न अदालत मे जज के सामने लाने का कोई काम था। इतना ही नही, जेल मे बेचारे निरपराध युवकों पर अत्याचारों की भी कमी न थी। कही-कही पर एक प्रकार से हद ही कर दी गई। उन दिनों बंगाल मे मि० टेगार्ट का ही राज्य था। अस्तु, वे लोगों की आखों में कांटे की भांति खरकने लगे।

क्रान्तिकारी दल प्रायः मृतप्राय-सा हो चुका था। एक-एक कर सभी कार्यकर्त्ता पकडे जा चुके थे। चारों ओर से यही सुनाई पड़ने लगा कि क्रान्तिकारी दल समाप्त हो गया। किन्तु उस दिन एक बालक को अंग्रेज़ की हत्या करने के बाद वीरतापूर्वक अदालत मे अपना अपराध स्वीकार करते देख, सारा देश आश्चर्य से चौक पड़ा। लोगों ने उसकी ओर श्रद्धा-भरी निगाह से देखा। किसीने कहा, वह मस्त था, पागल था, दीवाना था, किसीने कहा उसे देशप्रेम की लग्न थी और उसके हृदय में थी प्रतिहिंसा की आग। एक ने उसे हत्यारा, घातक और पापी के नाम से सम्बोधित किया तो दूसरे ने उसके काम मे निस्वार्थ देश-सेवा की झलक देखी। किन्तु उस पागल ने फांसी के तख्ते पर खड़े होकर बड़ी शान से, उच्च स्वर में केवल इतना ही कहा कि—"मैं तो टेगार्ट को मारने आया था। निर्दोष डे साहब के मारे जाने का मुझे हृदय से दु.ख है।"

विद्यार्थी जीवन मे ही गोपीमोहन क्रान्तिकारी दल के सदस्य बन गए थे। मि० टेगार्ट के पिछले कारनामे तथा उस समय किए गए अत्याचारों से उसके हृदय में प्रतिहिंसा की आग सुलग उठी। धीरे-धीरे उसका स्वभाव भी बदलने लगा। जो मोहन, मोहन बनकर पहले सबको हंसाया करता था, उसने अब मानो एकदम मौनव्रत धारण कर लिया। उसकी चंचलता गम्भीरता मे परिणत हो गई। अब वह एकान्त में बैठकर न जाने घण्टो तक क्या सोचा करता था!

देखने वाले बतलाते हैं कि कुछ दिनों बाद उसकी अशान्ति इतनी बढ़ गई कि वह बात करते-करते टेगार्ट का नाम लेकर चिल्ला पड़ने लगा। एक दिन तो रात में सोते-सोते टेगार्ट को ललकारकरउठ बैठा। उसके बादवह एक प्रकार से पागल-सा हो गया। सोते-जागते हर समय उसे टेगार्ट का ही ध्यान रहने लगा।

मन ही मन न जाने क्या निश्चित कर, एक दिन वह टेगार्ट के बंगले के सामने जाकर घूमने लगा। कुछ देर बाद उस बंगले से एक अंग्रेज महोदय के बाहर निकलते ही पिस्तौल की आवाज आई और वे महाशय ज़मीन पर आ गिरे। क्रोध के आवेश में बालक ने पिस्तौल की सभी गोलियां एक-एक करके उन्हीं पर समाप्त कर दीं। किन्तु यह क्या ? यह तो टेगार्ट नहीं हैं। मोहन ने पिस्तौल ज़मीन पर पटक दी और पुलिस ने बढ़कर उसे ज़ंजीरों से जकड़ लिया।

अभियोग चलने पर उसने सब बातें मान लीं। अस्तु × ×।× की हत्या के अपराध में उसे फांसी की सज़ा हुई। उस समय मोहन के भोले मुख पर अहंकार-मिश्रित गर्व की जो एक रेखा दिखलाई पड़ी थी, वह उसी प्रकार के कुछेक मनुष्यों में देखने को मिलती है।

गोपीमोहन को गए आज कई वर्ष हो गए, इसी प्रकार और भी कितने ही वर्ष बीत जाएंगे। इस समय भारत उनके पार्थिव शरीर को भले ही भुला दे, किन्तु उनके उस भयानक कार्य के पीछे जो महान आदर्श छिपा था उसे भुलाने का साहस उसमें कभी भी न हो सकेगा।

—भवभूति

श्री धन्नासिंह

पंजाब के वड्बलपुर नामक एक गांव में उनका बाल्यकाल बीता था। वे शरीर से बहुत बलिष्ठ तथा सुन्दर थे। साहस तथा उत्साह उनकी नस-नस में भरा था और भय स्वयं उनसे भय खाता था। गुरु के बाग में अकालियों पर किए गए अत्याचारों को देखकर आप शान्तिमय आन्दोलन के विरोधी हो गए। इन्हीं दिनों आप ही जैसे विचार वाले कुछ और उन्मत्त वीर भी देश को परतंत्रता-पाश से छुड़ाने की उधेड़-बुन में किसी दूसरे मार्ग की आयोजना कर रहे थे। बस, बबर अकाली आन्दोलन की नींव पड़ी और आपने भी उसीमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया।

प्रचार कार्य तथा संगठन के साथ ही विश्वासघातियों को दण्ड देने में भी आपने कुछ कम भाग नहीं लिया। पुलिस के साथ मिलकर जिस समय पटवारी अर्जुन सिंह अकालियों को हर तरह से नुकसान पहुंचा रहा था उस समय उसके मारने के दोनों प्रयासों में आपका काफी हाथ था। बाद में 10 फरवरी 1923 को अपने तीन और साथियों को लेकर आपने रानी थाने के बिशनसिंह नामक जैलदार को पुलिस का भेदिया होने के कारण मार दिया। इस काम में आपके साथ फांसी पाने वाले श्री सन्तसिंह भी थे। बाद में एक नोटिस द्वारा इस बात का एलान भी किया गया था कि बिशनसिंह केवल 'सुधार' के लिए मारा गया है।

श्री बन्तासिंह धामियां द्वारा मारे जाने वाले 'बूटा' लम्बरदार की हत्या में भी आप शामिल थे। कहते हैं कि इस लम्बरदार ने कितने ही निर्दोष अकाली वीरों को यों ही पुलिस के जाल में फंसा दिया था और इसी कारण उसमें 'सुधार' की आवश्यकता समझ इन लोगों ने यह काम किया था।

इसके कुछ ही दिनों बाद 19 मार्च 1923 को तीन और साथियों को साथ लेकर मिस्त्री लाभसिंह नामक व्यक्ति का 'सुधार' किया। और फिर 27 मार्च को उसे, जिसने कि पुलिस को आपके बारे में बहुत-सी बातों का पता दे रखा था, जा मारा। इस हत्या के बारे में 'बबर अकाली' नामक पर्चे में इस प्रकार लिखा गया था—"इनाम × × × आज 27 मार्च को बड्बलपुर के हजारासिंह को जमीन के तीन स्क्वेयर्स अर्थात् तीन गोलियां दी गयीं।"

इसी प्रकार विश्वासघातियों तथा देश-द्रोहियों को उनके अपराध का पुरस्कार देते और आन्दोलन का प्रचार करते दिन बीत रहे थे कि एक दिन 25 अक्टूबर, 1923 को आप पुलिस के घेरे में आ गए। आज तक भारत में जितने भी विप्लव के प्रयास हुए हैं, प्रायः उन सभी की असफलता का कारण अपने भाइयों का विश्वासघात ही रहा है। अस्तु, आप ज्वालासिंह नामक एक-दूसरे व्यक्ति के पास

आदमी तैनात किए गए। इनाम भी बढ़ गया; मगर वे फिर भी हाथ न आए।

उदयसिंह जी से आपका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। अधिकतर वे दोनों एक ही साथ रहा करते थे। फरार भी दोनों साथ ही साथ हुए थे और अन्तिम समय में भी दोनों ने साथ ही साथ लड़कर प्राण दिए। प्रेम तथा मैत्री का कैसा ज्वलन्त उदाहरण है!

पुलिस को बबर अकालियों के सम्बन्ध मे भेद देने के अपराध में उदयसिंह ने 14 फरवरी, 1923 को हैयतपुर के दीवान को मार दिया। आपका कहना था कि मैं दुश्मन को छोड़ सकता हूं, किन्तु घर के भेदिये को नही छोड़ सकता। इसके बाद 27 मार्च, सन् 1923 को उसी अपराध मे आप दोनों साथियों ने कुछ और साथियों को लेकर बड्बलपुर के हजारासिंह का वध किया। इसके अतिरिक्त और भी कई-एक देशद्रोहियों को उनके अपराध का दण्ड इन लोगों ने दिया था। दण्ड का विधान केवल मौत ही न था, अपराध कम होने पर उसकी सम्पत्ति लेकर या नाक-कान काटकर भी छोड़ दिया जाता था।

एक दिन जब ये चारों वीर कपूरथला राज्य के बोमेली गांव के पास से होकर जा रहे थे, तो किसी भेदिये ने पुलिस सुपरिंटेंडेंट मिस्टर स्मिथ को इस बात का पता दे दिया। बस, उसी क्षण फौज के कुछ पैदल सिपाही और कुछ सवार लेकर उन्होंने उनका पीछा किया। ऐडिशनल पुलिस के सब-इन्सपेक्टर फतेह खां को भी पचास आदमी लेकर दूसरी ओर से भेजा गया। मिस्टर स्मिथ को पीछा करते देख इन लोगो ने चौंता साहब के गुरुद्वारे मे, जो पास ही में था, पनाह लेने का निश्चय किया। किन्तु पीछे से गोली चल रही थी, अतः ये लोग शत्रुओं का मुकाबला करते हुए गुरुद्वारे की ओर हटने लगे। अभी तक फतेह खां के आदमी एक ओर छिपे खड़े थे, किन्तु गोली चलने की आवाज़ सुनकर वे लोग भी बाहर आ गए। गुरुद्वारे के चारों ओर एक नाला था, ये चारों वीर स्मिथ की सशस्त्र सेना का वीरतापूर्वक सामना करते हुए इस नाले के पास पहुंच गये और पानी में घुसे ही थे कि पीछे से कुछ दूर पर खड़े हुए फतेह खां के आदमियों ने भी गोली बरसानी शुरू कर दी। एक ओर तो अस्त्र-शस्त्र से सजी हुई फौज और दूसरी ओर चार आदमी, और वे भी दो सेनाओं के बीच में! भला वे कब तक सामना कर सकते थे! अस्तु, कुछ देर इसी प्रकार सामना करने के बाद उदयसिंह और महेन्द्रसिंह गोली खाकर पानी में ही गिर गए।

कर्मसिंह किसी भांति नाले को पार गए और दूसरे किनारे से रान तक खड़े होकर शत्रुओं पर गोली चलाने लगे। फतेह खां ने दूसरे किनारे से पुकारकर कहा—"आत्म-समर्पण कर दो।" परन्तु उस वीर ने तो मरने और मारने की शपथ खाई थी। उसने 'न' कहते हुए फतेह खां पर गोली चलाई। दुर्भाग्यवश निशाना

खाली गया और दूसरे क्षण वह वीर भी माथे पर गोली खाकर सदैव के लिए उसी पानी में गिर गया।

जिस समय कर्मसिंह ने नाले की दूसरी ओर से सेना के सभी लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रखा था, उस समय विशनसिंह जी, जो अभी नाले के इसी किनारे पर थे, अवसर पाकर पास की नरकुल की झाड़ी में छिप गए। नरकुल के हिलने पर सन्देह हो गया और दो आदमी वहां देखने के लिए भेजे गए। उनके पास आते ही 'सत् श्री अकाल' के नाद के साथ ही विशनसिंह ने उनपर हमला कर दिया और तलवार के पहले ही हाथ में एक को बुरी तरह घायल कर दिया। दूसरे के कुछ दूर हट जाने पर जब आप नाले को पार करने का प्रयत्न कर रहे थे, तो उस दूसरे सिपाही ने उनपर गोली चला दी और इस प्रकार आप भी अपने तीन और साथियों की भांति उसी नाले में गिर गए।

यह घटना पहली सितम्बर, सन् 1923 की है।

—मधुसेन

बोमेली युद्ध के चार शहीद

प्रसिद्ध बबर अकाली-आन्दोलन के, मौत के साथ खिलवाड़ करनेवाले, अनेक नर-रत्नों में से श्री कर्मसिंह जी, श्री उदयसिंह जी, श्री बिशनसिंह जी और श्री महेन्द्रसिंह जी भी हैं। कार्यक्षेत्र में पैर बढ़ाने के बाद इन्होंने फिर कभी पीछे फिरकर देखने की इच्छा तक नहीं की। प्यारे देश को ठोकरों पर ठोकरें लगते देख, वे अपने आपको संभाल न सके। कैनेडा में भारतीयों के प्रति किए गए अत्याचार, जलियानवाला का हृदय-विदारक दृश्य, मार्शल ला और गुरु के बाग में निहत्थों पर डंडेबाजी आदि बातें वे और अधिक सहार न सके। उस समय परतन्त्रता-पाश को तोड़ फेंकने के लिए अधीर होकर उन्होंने जिस मार्ग का अनुसरण किया था, प्रस्तुत कहानी उसीका एक प्रतिबिम्ब-मात्र है।

उपरोक्त चार वीरों में से श्री कर्मसिंह दौलतपुर के, उदयसिंह रामगढ भुगिया के, बिशनसिंह मंगत के और श्री महेन्द्रसिंह पिंडोरी गंगासिंह के रहने वाले थे। जिस समय किशनसिंह गर्गज्ज ने बबर अकाली आन्दोलन की नीव डाली, तो इन चारों ने ही शान्तिमय असहयोग आन्दोलन को छोड़, उसमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। बहादुरी मे चारो ही एक-दूसरे से बढ़कर थे और ये लोग सदैव ही कठिन से कठिन तथा मुश्किल काम को ही पसन्द करते थे। कुछ दिनों के बाद कर्मसिंह तथा उदयसिंह मुख्य कार्यकर्त्ताओं में गिने जाने लगे।

अकाली मत की दीक्षा लेने के बाद कर्मसिंह जी ने गाव-गांव घूमकर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। आप दीवानों मे जाकर लोगो को समझाते कि हमपर आए दिन जो भी अत्याचार ढाए जा रहे है उन सब का मूल कारण हमारी अपनी ही कमज़ोरी है और जब तक हम अपने पैरों पर खडे होकर गुलामी को दूर नही करते, तब तक इसी भांति ठोकरें खाते रहेंगे, इत्यादि। कुछ ही दिन काम कर पाए थे कि गिरफ्तारी के सामान होने लगे। वारंट निकलने पर आप फरार हो गए और कार्य करते रहने पर भी अन्त समय तक पुलिस के हाथ न आए।

कर्मसिंह निरे सिपाही हों, सो बात न थी, वे एक अच्छे वक्ता थे और गाना भी जानते थे। 'बबर अकाली' नामक पत्र का सम्पादन भी इन्हींके द्वारा होता था। एक मस्त प्रेमी की भांति उन्हें यदि किसी बात की चिन्ता थी, तो अपने काम की। वे रात-दिन काम करके भी थकते न थे। आज किसी दीवान मे व्याख्यान दिया जा रहा है, तो कल विश्वासघाती को दण्ड देने का विधान हो रहा है, और परसों रुपया लेकर हथियार खरीदने के लिए कहीं दूर जाने की तैयारी हो रही है।

इधर पुलिस भी आपके लिए बहुत बेचैन थी। जगह-जगह पर पुलिस के

बालक दलीपा की गिरफ्तारी के बारे में पूछ-ताछ करने गए। उन्हें क्या पता था किदलीपसिंह पर इन्हीज्वालासिंह की कृपा हुईहै।ज्वालासिंह ने धन्नासिंह को एक ईख के खेत में बिठला दिया और स्वयं किसी बहाने से जाकर पुलिस सब-इन्सपेक्टर गुलजारासिंह को सूचना दे दी कि धन्नासिंह अमुक स्थान पर मौजूद है। इसपर दोनों ने होशियारपुर जाकरपुलिस सुपरिंटेंडेंटमिस्टर हार्टन को इस बात की सूचना दी। सुनते ही हार्टन ने ज्वालासिंह से धन्नासिंह को होशियारपुर के मननहाना नामक गांव के कर्मसिंह के चौबारे में लाकर ठहराने को कहा। ज्वालासिंह ने ऐसा ही किया। दूसरे दिन रात को ये दोनों ही कर्मसिंह के यहां बैलों के बाड़े में चारपाइयों पर सो रहे थे। आधी रात का समय था, ज्वालासिंह पुलिस को आता देख भाग गया। पुलिस बाड़े की ओर बढी ही थी कि धन्नासिंह भी उठकर उसी ओर को चलते बने, जिधर ज्वालासिंह गया था। पुलिस वालो ने,जिन्होंने कि पहले व्यक्ति को जान-बूझकर निकल जाने दिया था, आपको चारो ओर से घेर लिया। इस समय वे कुल मिलाकर 40 व्यक्ति थे। घिर जाने परआपअभी अपना रिवाल्वर निकाल ही रहे थे कि पुलिस सब-इन्सपेक्टर गुलजारासिंह ने आप पर लाठी चला दी।अचानक इस प्रहारको बचाने के व्यर्थ प्रयास में धन्नासिंह जी अपने को संभाल न सके और जमीन पर गिर गए। अब क्या था ? तुरन्त ही लोग आप पर टूट पड़े और बहुत मुश्किल के बाद आपको पकड़ने मे समर्थ हुए। हथकड़ी पड़जाने के बाद भी आपने कई बार अपना हाथ छुडाने का प्रयत्न किया था। अस्तु, आपको एक स्थान पर बिठलाकर दो-तीन पुलिस के आदमियों ने हथकड़ी की जंजीर पकड़ ली और दोनों हाथ ऊपर को उठाए रखे गए। डर बडी चीज है। अस्तु, इसपर भी संतोष न होने पर एक व्यक्ति ने पीछे से आपकी दोनों कलाइयां भी पकड़ लीं।

समय की भी क्या ही विलक्षण गति है ! जो धन्नासिंह अभी कुछ घण्टे पहले एक राष्ट्र-निर्माण का स्वप्न देख रहे थे, वही धन्नासिंह, हा, वही धन्नासिंह गिरफ्तार हो गए। नही, भला यह भी कभी सम्भव है ! उन्होंने तो मरने की शपथ खाई थी, न कि गिरफ्तार होने की। अस्तु, जिस समय आपको पुलिस वाले पकड़े खड़े थे, तो एकदम आपने एक ऐसा झटका मारा कि हाथ नीचे आ गया और साथ ही कमर के पास छिपे हुए बम मे कोहनी की एक ऐसी चोट दी कि एकदम धड़ाका हो गया।

देखते-देखते चारों ओर भगदड़ मच गई और जहां पर धन्नासिंह जी बैठे थे वहा पर खून-मांस और हड्डियों के एक ढेर के सिवा कुछ भी बाकी न बचा। साथ ही पुलिस के भी पाच आदमी जान से मारे गए और तीन बहुत बुरी तरह घायल हुए, जिनमे से हार्टन और एक कान्स्टेबिल अस्पताल मे बाद में मर गए। और इस प्रकार उस वीर खिलाड़ी ने अपनी इहलीला समाप्त की।

—चतुरानन

श्री वन्तासिंह धामियां

बबर-अकाली आन्दोलन की मुख्य रोमांचकारी घटनाओं मे से सुप्रसिद्ध 'मुंडर युद्ध' भी है। तीन बबर अकाली-वीरएक मकान मे घिर गएथे और घंटों तकअसंख्य सशस्त्र सैनिकों से युद्ध करते हुए दो ने तो वही प्राण दे दिए और तीसरा व्यक्ति इतने मुश्किल घेरे से भी साफ बचकर निकल गया। उनका नाम श्री वरयामसिंह था। मरने वाले थे श्री वन्तासिंह धामियां और श्री ज्वालासिंह कोटला।

श्री वन्तासिंह जी धमिया कला के रहने वाले थे। वहीं सन् 1900 के लगभग आपका जन्म हुआ था। बचपन से ही आपका स्वभाव बड़ा चंचल था। खेल-कूद मे आप बहुत चतुर थे। गांव के स्कूल मे आप पढने के लिए बिठलाए गए। चार-पाच वर्ष तक वही पढे। फिर दिन घर-बार के काम-काज मे लगे रहे। बाद मे आप फौज मे नौकर हो गए और तीन वर्ष तक 55 नम्बर सिक्ख पल्टन में काम करते रहे। वहा पर भी आप खेल-कूद में सबसे बढ़-चढकर थे। दौडने मे तो आप एक ही थे। उन्ही दिनों कुछेक लोगों के संसर्ग से आप डाके आदि मे योग देने लगे। परन्तु कुछ अधिक दिनो तक उस मार्ग पर नही चले थे कि बबर अकाली आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। दौलतपुर के श्री कर्मसिंह, रामगढ के श्री उदयसिंह आदि बबर अकालियो की साहसपूर्ण घोषणाएं पढ़कर आप बहुत प्रभावित हुए और उनमे ही जा शामिल हुए।

वे भली प्रकार समझ गए थे कि अपने पुराने पापों का प्रायश्चित्त केवल निज प्राणोत्सर्ग करने से ही हो सकेगा। वे अपनी उस कालिमा को निज रक्त से धोने के प्रयत्न मे व्यग्र होकर कार्य-क्षेत्र मे अग्रसर हुए थे। इस मार्ग में आकर भी उन्हे दो-एक डकैतियों मे योग देना पडा था, परन्तु आपका स्वभाव एकदम बदल गया था। सन् 1923 की दूसरी या तीसरी मार्च को जमशेर नामक स्थान के स्टेशन-मास्टर के घर डकैती हुई थी। उस समय नेतृत्व इन्ही के हाथ मे था। कहते है कि किसी एक नीच व्यक्ति ने एक स्त्री पर कुछ हाथ बढाने की चेष्टा की थी। उधर उस स्त्री को श्री बन्तासिंह ने दूर खडे होकर कहा—"माता, अपने आभूषण उतारकर स्वयं ही दे दो। हम आपको नही छुएंगे।" तब उसने रोकर दूसरे व्यक्ति की नीचतापूर्ण चेष्टा की कथा सुना, बड़े व्यग्य और वेदना भरी आवाज मे कहा—"अब इतना महात्मापन दिखाने से क्या होगा?"

वन्तासिंह यह बात सुनकर आग-बबूला हो गए। गंडासा लेकर उस नीच पर चला दिया। गर्दन कट ही तो गई होती, परन्तु एक दूसरे व्यक्ति ने बीच में ही हाथ रोक दिया। और सबने बहुत अनुनय-विनय के बाद उसका क्रोध शान्त किया।

उन्होंने कहा—"ऐसे नीच व्यक्ति हमारी स्वराज्य-योजना को यों ही बदनाम कर देंगे। पहले ही विवश हो डकैती करनी पड़ती है, तिस पर भी यह अन्धेर! इस तरह हम कर ही क्या सकेंगे?" इसी से समझा जा सकता है कि वैप्लविक बनने पर उनके स्वभाव मे कितना अन्तर आ गया था।

फिर वे बबर-अकाली दल के प्रोग्राम के अनुसार काम करते रहे और कई एक देशघातकों को मृत्युदण्ड दिया। 11-12 मार्च को पुलिस के खुशामदी नम्बरदार बूटा को, जो कि राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में सरकार की विशेष सहायता किया करता था, उसके घर पर आक्रमण कर मार दिया। इसी प्रकार उन दिनो यह सभी कार्य होता रहा। उधर पुलिस आप लोगों को पकड़ने के लिए दोआबे भर मे ठोकरें खा रही थी। आपको पकड़वाने के लिए बहुत बड़ा इनाम भी घोषित कर दिया गया था। परन्तु आपको पकड़ना कोई आसान काम न था। एक दिन एक छोटे-से जंगल मे कुछ घुड़सवार सिपाहियो से आपकी भेंट हो गयी। वे लोग इन्ही बबर अकाली-वीरों को मारने या पकड़ने पर नियुक्त किए गए थे। आपने उन्हें अकेले ही ललकारा। सभी तुरन्त भाग गए—"अजी, हम न तो गिरफ्तार करने मे राज़ी हैं न मारने मे ही, क्योंकि आप ही लोगों की बदौलत हम लोगों की भी कद्र हो रही है और तिगुनी-चौगुनी तनख्वाहें मिल रही है।" आपके साहस के बारे मे ऐसी बहुत-सी बातें सुनी जाती हैं। कहा जाता है कि एक दिन एक छावनी में अकेले ही घुसकर रिसाले के पहरेदार की घोड़ी और रायफल छीनकर ले गए थे। अस्तु, इसी तरह बहुत दिनों तक पुलिस के साथ आंखमिचौनी होने के बाद अन्त में 12 दिसम्बर, 1913 को आप पुलिस के घेरे मे आ गए। बात दरअसल यह थी कि शाम, चुरासी गांव, जो जालंधर से 10-12 मील की दूरी पर है, का एक व्यक्ति जगतसिंह सन्देह मे पकड़ा गया। पुलिस उसके विरुद्ध कुछ प्रमाण न पा सकी, इसलिए उसे धमकाकर और इस बात पर राज़ी करके, कि वह बबर-अकालियों की गिरफ्तारी मे सहायता करे, छोड़ दिया गया। उस कमबख्त ने अकालियों से दोस्ती गांठ ली। कुछ दिन पुलिस की हवालात में रह जाने के कारण उसे अपनी वीरता और गंभीरता की डींगें मारने का बहुत अवसर मिल गया था। परन्तु वह तो था निरा नर-पशु। उसने एक दिन बन्तासिह, ज्वालासिह और वरयामसिह को अपने घर पर टिका दिया और स्वयं पुलिस को सूचना भेज दी। कुछ घटे दिन रहते ही सेना ने गाव घेर लिया।

जब इन लोगों ने जाना कि शत्रुओं ने गांव का घेरा डाल लिया है तो वे तुरन्त एक चौबारे में जा चढ़े। वे चाहते थे मरना, परन्तु वीरतापूर्वक लड़-लड़-कर। वह संग्रामिक दृष्टि से ऐसा सुन्दर स्थान था कि उन तीन आदमियो ने ही घण्टो पुलिस का नाकों दम किए रखा। दोनों ओर से खूब गोली चली। सैनिक लोगो की मशीनगनें और रायफलें सब व्यर्थ हुई जाती थी। सामने मकान की

श्री वरयामसिंह धुग्गा

श्री वरयामसिंह जी का जन्म धुग्गा नामक गांव, जिला होश्यारपुर में लगभग 1892 या 93 में हुआ था। आप बड़े सुदृढ़ और शक्तिशाली व्यक्ति थे। शरीर गठा हुआ और मज़बूत था। आप भी सेना में भरती हो गए थे। बहुत दिनों तक वहीं पर सैनिक शिक्षा पाकर नौकरी की थी। उस दौरान मे एक दिन किसी घरेलू शत्रु से बदला लेने के लिए सायंकाल की हाज़िरी देकर आप चले गए। बीस मील की दूरी पर भागे हुए गए। उस व्यक्ति को कत्ल कर अपना नाम घोषित कर सुबह की हाज़िरी तक पलटन में फिर आ गए। इसलिए आपके विरुद्ध उधर कुछ भी न हो सका। भला फौज के रजिस्टर भी झूठे हो सकते हैं? बाद में आप डकैत बन गए। दोआबे में आप बड़े प्रसिद्ध डकैत थे। आपके नाम की धाक चारों ओर फैली हुई है।

परन्तु बबर-अकाली जत्थे के बनते ही आप उसमें शामिल हो गए और श्री बन्तासिंह जी के साथ मिलकर सारे काम में योग देते रहे।

उस दिन 12 दिसम्बर, सन् 1923 को जब बन्तासिंह मुंडेर नामक गांव के घेरे में आ गए थे तो आप भी उनके साथ थे। परन्तु मकान में आग लगने पर आप साहस कर घेरे में से भाग निकले थे। आपको देखते ही सिपाहियों के प्राण खुश्क होने लगते थे।

इसके बाद दूर लायलपुर के ज़िले मे चले गए। उधर एक सम्बन्धी के घर ठहरे हुए थे। बचपन से उसी सम्बन्धी ने आपका पालन-पोषण किया था। परन्तु लाभ और स्वार्थ मनुष्य की मनुष्यता तक का नाश कर देता है। वरयामसिंह से कहा गया—"हथियार गाव से बाहर खेतों में रख दीजिए ताकि किसीको सन्देह न हो सके।" गांव में ले गए, भोजन आदि कराया। रात अंधेरी थी। भोजन करते ही कहा—"जाता हूं, शस्त्र दूर छोड़कर दिल में न जाने क्या होने लगता है।" लौटकर शस्त्रों वाले स्थान को चल दिए। परन्तु सेना तो पहले से ही वह स्थान घेरे हुए थी। पुलिस सुपरिंटेंडेंट मि० डी० गेल महाशय पहले सैनिक अफसर रह चुके थे। बड़े साहसी और वीर थे। उनका इरादा उन्हें जीवित गिरफ्तार कराने का था। परन्तु उस वीर ने तो इरादा कर रखा था लड़कर मरने का। चारों ओर से घेरे हुए सेना धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। आप भी सब ताड़ गए। एक स्थान पर खड़े हो सोचने लगे कि किया जावे तो क्या? मि० डी० गेल ने ज़ोर से कहा, "वरयामसिंह, आत्मसमर्पण कर दो!" वरयामसिंह ने उत्तर दिया—"अरे, हिम्मत है तो एक बार शस्त्र ले लेने दो, फिर दो-दो हाथ हो ही जायें।" परन्तु यह

श्री किशनसिंह गर्गज्ज

आप जालंधर जिले के वारिंग नामक गांव के रहनेवाले थे। पिता का नाम श्री फतेहसिंह था। कुछ समय तक स्कूल में शिक्षा पाने के बाद सेना में भरती हो गए और फिर मार्च, 1921 तक 35 नम्बर सिक्ख रिसाले मे हवलदार के पद पर काम करते रहे।

जलियावाला बाग की घटना के बाद देश में असहयोग की सर्वव्यापी लहर चली और उसीसे प्रभावित होकर आपने भी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। आपने गिरफ्तार होने पर लिखित बयान कहा था, "जब मैं फौज में नौकरी कर रहा था, तभी सरदार अजीतसिंह की नजरबन्दी, दिल्ली के रकाबगंज के गुरुद्वारे की दीवार के तोडे जाने, बज-बज में निर्दोष यात्रियों पर गोली चलाने, रौलट एक्ट और जलियानवाला बाग की दुर्घटना और मार्शल ला आदि बातो के कारण मेरे हृदय में घृणा उत्पन्न हो गई थी और अन्त में गुलामी के बोझ को और अधिक न सह सकने के कारण मैंने सरकार की नौकरी छोडकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया।"

अभी पिछले घाव भरने भी न पाए थे कि दो एक और गहरी चोट से प्राण छटपटा उठे। 20 फरवरी, 1921 को ननकाना साहब की दुर्घटना के बाद आपने अकाली दल मे भाग लेना आरम्भ कर दिया और अप्रैल में उक्त दल के मन्त्री चुने गए। किन्तु इस प्रकार चुपचाप पुलिस के हाथों मार खाना आपको अच्छा न लगा और उन्होंने गुप्त संगठन की आयोजना प्रारम्भ कर दी।

अभी कार्य आरम्भ ही हुआ था कि व्यक्तियों की असावधानी से भेद खुल गया। 6 आदमी तो गिरफ्तार किए गए, किन्तु आप अपने चार और साथियों के साथ फरार हो गए। कुछ दिन मालवा मे जिन्द राज्य के मस्तुअना नामक स्थान पर रहकर आप 1921 की सर्दियों में फिर दोआब वापिस आ गये। आते ही आपने 'चक्रवर्ती दल', जो बाद को 'बबर अकाली दल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, के बनाने की घोषणा की और गांव-गाव जाकर व्याख्यान देने आरम्भ कर दिए। किशनसिंह एक अच्छे वक्ता थे। अस्तु, लोगों पर इनकी बातों का अच्छा प्रभाव पड़ा। कहते है कि गिरफ्तारी के समय तक आपने कुल 327 व्याख्यान भिन्न-भिन्न स्थानों पर दिये थे।

जिस समय कपूरथला राज्य तथा जालंधर जिले के अन्तर्गत किशनसिंह जी अपने कार्य को विस्तार दे रहे थे, ठीक उसी समय होश्यारपुर जिले में दौलतपुर के कर्मसिंह तथा उदयसिंह जी, जो कि बाद में बोमेली के पास पुलिस के साथ

लड़ते हुये मारे गए, उसी प्रकार विचारों का प्रचार कर रहे थे। अन्त में इन दोनों पार्टियों के मिल जाने पर कार्य और भी जोरों पर होने लगा। बम, रिवाल्वर तथा बन्दूकों का संग्रह किया गया और स्थान-स्थान पर केन्द्र स्थापित हुये। उनका विचार था कि इस प्रकार पर्याप्त शक्ति के हो जाने पर सेनाओं की सहायता से 1857 की भांति गदर द्वारा भारत को आजाद किया जाये। ये लोग घर के भेदियों को कभी न छोड़ते थे।

'बबर अकाली' लोग भेदियों के वध करने को उनका "सुधार करना" कहते थे। अस्तु, बहुतों का 'सुधार' करने और कार्य को काफी विस्तार दे चुकने के बाद अन्त में भेद खुल गया और गिरफ्तार कर लाहौर लाए गए। अभियोग चलने पर आपने सब बातें मान ली और कहा—"मैं सरकार का कट्टर शत्रु था और इसीसे जिस तरह भी हो, अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करने की इच्छा से ही यह सब कुछ किया था।" अदालत से आपको फासी की सजा मिली और एक दिन लाहौर सेन्ट्रल जेल मे वे भी उसी पूर्व परिचित रस्सी से लटका दिए गए।

—मोहन

श्री सन्तासिंह

आप लुधियाना ज़िले के 'हरयों खुर्द' नामक गांव के रहने वाले थे। पिता का नाम सूबासिंह था। सन्तासिंह के बाल्य-जीवन तथा शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किसी विशेष बात का पता नही। हां, 1920 के फरवरी मास में आप 54 नं० सिक्ख रिसाले में भरती हुए और दो साल तक नौकरी करने के बाद 26 जनवरी, 1922 को वहा से त्यागपत्र दे दिया। फौज में नौकरी करने से पहले आप खालसा हाईस्कूल, लुधियाना मे क्लर्क का काम भी कर चुके थे।

नौकरी छोड़ने के बाद अकालियों के त्याग तथा दृढ़ता से प्रभावित हो आपने भी उसमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और कुछ ही दिनों में अपनी चतुरता तथा कार्य-संलग्नता के कारण आन्दोलन के एक प्रमुख नेताओं में से गिने जाने लगे। फैसला सुनाते हुए जज ने आपके बारे में कहा था—"अकालियों के कुछेक कार्यों को छोड़कर इस अभियुक्त ने प्राय: सभी मे भाग लिया है और इस षड्यन्त्र की आयोजना मे किशनसिंह और कर्मसिंह के बाद इसीका अधिक हाथ था।"

उद्देश्य की प्राप्ति मे बाधा पहुंचाते देख, आपने बिशनसिंह जैलदार को अकेले ही जाकर मार दिया था। इसके अतिरिक्त बूटा, लाभसिंह, हजारासिंह, राला और दित्तू, सूबेदार गेंडासिंह और नौगल शर्मा के नम्बरदार आदि देश-द्रोहियो को उनके अपराध का दण्ड देने में भी आप सम्मिलित थे।

अन्त में अपने ही एक सम्बन्धी के विश्वासघात से आप एक दिन गिरफ्तार हो गये। अदालत से कुछ सवाल किए जाने पर आपने कहा—"इस सरकार से मुझे किसी प्रकार के भी न्याय की आशा नही। अस्तु, मैं एक भी सवाल का जवाब देना नही चाहता।"

अन्त में आपने स्वयं ही सब अपराधों को स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा—"यद्यपि मैं इस बात को भलीभांति जानता हूं कि मेरे अपराध स्वीकार करने से मेरा केस और भी बिगड़ जायेगा, किन्तु फिर भी मैंने जो कुछ किया, वह अच्छे के लिए ही किया था। अस्तु, उसमें से एक बात को भी मैं छिपाना नही चाहता।"

अदालत से आपको फांसी की सज़ा मिली, और 27 फरवरी, 1926 को लाहौर सेण्ट्रल जेल में अपने और पांच साथियों सहित आप भी तख्ते पर झूल गए।

—वीर सिंह

गुस्ताखी वे लोग क्यों सहने लगे। बस मार पड़ने लगी ! कभी-कभी बीच-बीच में कुछ लालच भी दिया गया, पर अन्त में उसी एक खामोशी के सिवा और कुछ हाथ न आया।

कहते हैं कि श्री दलीपसिंह देखने मे वहुत भोले तथा सुन्दर थे। आयु तो थी केवल 17 वर्ष की ही। आपकी बाल्यावस्था तथा भोलेपन पर मिस्टर टैंप सेशन जज मुग्ध-से हो गए थे। वे नही चाहते थे कि उन्हें फांसी की सजा दी जाए। परन्तु सभी गवाहों की गवाही आपके विरुद्ध सुनकर आप झुंझलाते थे और येन-केन-प्रकारेण यही चेष्टा करते थे कि दलीपसिंह के विरुद्ध कुछ न लिखें। कई दिन तक यही खींचातानी चली, आखिर एक दिन श्री दलीपसिंह हाथ बाधकर जज महोदय के सामने जाकर खड़े हो गए और कहा—"आपकी इस कृपा-दृष्टि के लिए मैं बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूं, परन्तु कृपाकर पहले मेरा वक्तव्य लिख लीजिए। मैंने यह सभी कुछ किया है और अगर आज छूट जाऊं तो फिर यही सब करूंगा। परन्तु आप मुझे जीवित रखने के लिए क्यों लालायित हो रहे हैं? मैं तो फांसी पर लटककर प्राण दिया चाहता हूं। उसका कारण यह है कि मुझे ईश्वर की कृपा से जो यह मानव-देह जैसा दुर्लभ पदार्थ मिला है, इसे अभी तक किसी तरह भी मैंने अपवित्र नहीं किया है। और चाहता हू कि आज इसी तरह पवित्र देह 'मां' के चरणों में भेट कर दूं। कौन कह सकता है कि कुछ दिन और जीता रहा तो यह पावित्र्य कायम रहे अथवा नही, और फिर इस बलिदान का सारा महत्त्व और सौन्दर्य ही जाता रहे।"

जज हैरान होकर उनके मुंह की ओर ताकता रह गया। अस्तु फैसला सुनाए जाने पर उन्हें फांसी का दण्ड मिला।

27 फरवरी, 1926 का दिन था। भुवन भास्कर की पहली ही लाल किरण के साथ भगवान ने उस युवक संन्यासी के पवित्र जीवन पर अपनी छाप लगा दी।

> खूं के हरफ़ों से लिखा जाएगा तेरा वाक़ाय।
> मुझको भूलेगी न यह पुरगम कहानी हाय-हाय॥

—कपिल

श्री नन्दसिंह

आपका जन्म सन् 1895 ई० में जालन्धर जिले के घुड़ियाल नामक गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम गंगासिंह जी था। छोटी ही उम्र में माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण आपने रावलपिण्डी में अपने बड़े भाई के पास परवरिश पाई। ये बचपन से ही बड़े फुर्तीले थे और खेल-कूद की ओर अधिक रुचि थी। 15 वर्ष की ही आयु में शादी हो जाने के बाद आप कुछ समय तक मकान पर ही बढ़ई का काम करते रहे और फिर बसरा चले गए।

ननकाना साहब की घटना के बाद अकाली आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा और आप भी उसीमे भाग लेने की इच्छा से देश को वापस आ गए। उस समय गुरु के बाग के सत्याग्रह में उन्हें भी छह महीने की सजा भुगतनी पड़ी थी। जेल में मार भी अच्छी खानी पड़ी। अस्तु, यहीं से आपके विचारों में परिवर्तन होना आरम्भ हो गया। उस नौजवान आत्माभिमानी ने देखा कि इस प्रकार निर्दय पुलिसवालों के डण्डे खाने से काम न चलेगा। अस्तु, जेल से बाहर आते ही आप किशनसिंह के बबर अकाली दल में सम्मिलित हो गए। उन्होंने अब मार खाने की बात को छोड़कर मरने और मारने की शपथ ली।

सत्याग्रह मे सज़ा होने पर आपके भाई ने माफी मांगकर छूट आने की सलाह दी। कहा—"बड़े भाई का शरीरान्त हो चुका है। लड़के की शादी करनी है। अस्तु, यदि ऐसी अवस्था मे आप भी जेल चले गए तो कुछ भी न हो सकेगा।" इसपर आपने उत्तर दिया—"यदि बड़े भाई के बिना शादी हो सकती है तो मेरे बिना भी हो सकती है। इन शादी जैसे घरेलू मामलों के लिए मैं कौम का काम रोकना नही चाहता।"

बबर अकाली आन्दोलन में भाग लेने के बाद से गांव का सूबेदार गेंदासिंह आपको बहुत तंग करने लगा। वह इनकी सभी बातों की सूचना पुलिस में दे देता। अस्तु, एक दिन आपने जाकर उसे मार दिया। पुलिस ग्यारह दिन तक गाव वालों को तंग करती रही, तब आपने उन लोगों से कहा—"जो कुछ किया है मैंने किया है। तुम लोग व्यर्थ में इन लोगों को क्यों तंग करते हो?"

आपको गिरफ्तार कर मुकदमा चलाया गया और फांसी की सजा हुई। सजा सुनाई जाने के बाद आपने घर वालों से कहा—"तुम लोग मेरी फिक्र न करना। मैं किसी बुरी मौत से नही मर रहा हूं। मुझे इस बात की खुशी है कि मेरे प्राण देश के काम के लिए जा रहे हैं। मैंने इमारत की नींव डाल दी। अब यह देश का फर्ज है कि यदि वह आज़ाद होना चाहता है तो उस नींव पर मकान बनाकर खड़ा करे।"

आपने यह भी कहा था कि मरने के बाद हम सबको एक ही चिता पर जलाना और राख को रावी में डाल देना।

अन्त में 27 फरवरी, सन् 1926 को सेन्ट्रल जेल में और पांच साथियों के साथ आपको फांसी दे दी गई और उनके सम्बन्धियों ने उनकी इच्छानुसार सबका एक ही चिता पर अन्तिम संस्कार किया।

—नटनाथ

श्री कर्मसिंह

आपके पिता का नाम श्री भगवानदास था। कौम के सुनार थे और जालंधर जिले के मनको नामक गांव में आपका घर था। बचपन अधिकतर खेलकूद में बीता और घर के निर्धन होते हुए भी आपकी तबीयत दुनियावी कामों में कम लगती थी। छुटपन से ही ये बहुत चंचल थे और कभी किसीकी कड़ी बात न सहते थे।

असहयोग आन्दोलन के दिनों में आपने स्वतंत्रता का पाठ सीखा और किशनसिंह के बबर अकाली दल बनने पर आप उसमें शामिल हो गए।

गेंदासिंह सूबेदार के मारे जाने में आप भी शामिल थे। उसके बाद कुछ दिनों तक प्रचार कार्य करते रहने के बाद आप 12 मई, 1923 को गिरफ्तार हो गए।

अभियोग चलने पर आपने कहा—"अदालत की सारी कार्रवाई एक नाटक के समान है और जज लोग पुलिस के हाथ में खिलौने के समान हैं। अस्तु, मैं किसी प्रकार का बयान अथवा सफाई आदि देना नहीं चाहता।" जेल में बयान लेने के लिए आपके साथ कड़ा व्यवहार भी किया गया और इस बात पर बाध्य किया गया कि वे सारा हाल पुलिस को बता दें। किन्तु आपने किसी भी बात का उत्तर देने से इन्कार कर दिया।

अदालत ने आपको फांसी की सजा दी और 27 फरवरी, सन् 1926 को लाहौर सेण्ट्रल जेल में पांच और साथियों के साथ फांसी दे दी गई।

—प्रभात

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल'

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूं, न मेरी आरजू रहे।।

पराधीनता के इस युग में दिव्य आलोक को धारण कर न जाने वे कहां से आए, अपने कल्पना राज्य में स्वर्गलोक की वीथियों का निर्माण किया और अन्त में विश्व को आभा की एक झलक दिखाकर अपने प्यारे मालिक के पास चले गए। उस दिन विश्व ने विमुग्ध नेत्रों से उनकी ओर देखा, श्रद्धा और भक्ति के फूल भी चढाए। उस दिन, जब उस मोहिनी मूर्तिकी मदभरी आखें सदा के लिए बन्द हो गई थी, तो उनकी एक झलक मात्र के लिए जन-समूह पागल-सा हो उठा था। धनिकोंने रुपए लुटाए, मेवे वालों ने मेवा से सत्कार किया, माताओ और बहनों ने छतों पर से फूलों की वर्षा की और जनता ने 'वन्दे मातरम्' के उच्च निनाद के साथ उसका स्वागत किया। उस प्यारे के उस दिन वाले निराले वेष को देखकर माताए रो पड़ी, वृद्ध सिसकिया लेने लगे, युवको के तरुण हृदय प्रतिहिंसा की आग से जल उठे और बालक झुक-झुककर प्रणाम करने लगे।

मैनपुरी ज़िले के किसी गांव मे सन् 1900 के लगभग आपका जन्म हुआ था, किन्तु बाद मे आपके पिता पंडित मुरलीधर जी सपरिवार शाहजहांपुर में आकर रहने लगे और अन्त तक यही स्थान हमारे चरित्र-नायक का लीला-क्षेत्र रहा। अस्तु, उर्दू की शिक्षा पाने के बाद माता-पिता ने स्थानीय-अग्रेज़ी स्कूल मे भरती करा दिया था। उन दिनों आपका जीवन कुछ विशेष अच्छा न था। किन्तु इसी बीच मे आर्यसमाज के प्रसिद्ध स्वामी सोमदेव से आपका परिचय हो गया। बस, यही से जीवन ने पलटा खाया और वे स्वामी जी के साथ-साथ आर्यसमाज के भी भक्त बन गए। आप स्वामी जी को 'गुरु' कहा करते थे। यह भी कहा था कि देशसेवा के भाव पहले-पहल आपको स्वामी जी से ही मिले थे। अस्तु, सन् 1915 के विराट विप्लवायोजन के विफल हो जाने के बाद भी क्रान्तिकारी लोग एकदम निराश न हुए, वरन् उन्होंने मैनपुरी को केन्द्र बनाकर फिर से कार्य आरम्भ कर दिया। श्री गेंदालाल दीक्षित की अध्यक्षता मे बहुत दिनों तक काम होते रहने के बाद अन्त को इसका भी भेद खुल गया और फिर गिरफ्तारियों का बाज़ार गर्म हो उठा। दल के बहुत-से लोगों के पकड़े जाने पर भी मुख्य कार्यकर्त्ताओं मे से कोई भी हाथ न आ सका। उस समय आप अंग्रेज़ी की दसवी कक्षा मे थे। ज़ोरों से धर-पकड़ होते देख, अपनी गिरफ्तारी का हाल सुनकर आप फरार हो गए।

मैनपुरी विप्लव दल के नेता श्री गेंदालाल के ग्वालियर में गिरफ्तार हो जाने पर, उन्हें जेल से छुड़ाने के विचार से आपने 19 वर्ष की अवस्था में अपने साथ के पन्द्रह और विद्यार्थियों को लेकर पहली डकैती की थी। इस पहले ही प्रयास में उन्होंने जिस दृढ़ता तथा साहस से काम लिया था, उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि वे स्वभाव से ही मनुष्यों के नेता थे।

प्रायः सभी अनुभवी सदस्य पकड़े जा चुके थे। अस्तु, स्कूल के पन्द्रह विद्यार्थियों को लेकर ही आप अपने निश्चय पर चल दिए। पिता से कहा—"मेरे एक मित्र की शादी है, वे गाड़ी ले जाना चाहते हैं। गाड़ीवान उन्हीका रहेगा और मुझे भी उसमे जाना पड़ेगा।"

सरल स्वभाव पिता ने गाडी दे दी। उन्हें क्या पता कि यह कैसी शादी है? सन्ध्या समय प्रस्थान कर, कुछ रात बीतने पर, एक स्थान पर गाड़ी रोक दी गई। निश्चित स्थान वहां से 10 मील की दूरी पर था। एक आदमी को गाड़ी पर छोड़ शेष सभी साथी पैदल ही चल दिए। किन्तु उस दिन अंधेरे में मार्ग भूल जाने से वह गांव न मिला। निराश हो सबके सब गाड़ी के पास वापस आए। दूसरे दिन थोड़े ही प्रयास के बाद वह स्थान मिल गया। अंधेरी रात में चारों ओर निस्तब्धता का राज्य था। निद्रा के मोहक जाल मे सारा संसार बेसुध सोया पड़ा था। तीन लडकों को मकान की छत पर चढ़ने की आज्ञा हुई। लाड-प्यार से पाले गए स्कूल के उन लडकों ने काहे को कभी ऐसे भयानक कार्य में भाग लिया था? देर करते देख कप्तान ने ज़ोर से कहा—"यदि ऐसा ही था तो चले ही क्यों थे?" इस बार साहस कर वे लोग मकान की छत पर चढ गए। आज्ञा हुई—"अन्दर कूदकर दरवाज़ा खोल दो।" किन्तु यह काम तो और भी कठिन था। कप्तान ने फिर कहा—"जल्दी करो, देर करने से विपद की सभावना है।" इसी प्रकार तीन बार कहने पर भी कोई नीचे न उतर सका। वे लोग इधर-उधर देख ही रहे थे कि एक ज़ोर की आवाज़ के साथ बन्दूक की गोली से एक का साफा नीचे आ गिरा। इस बार तीनों बिना कुछ सोचे-विचारे मकान मे कूद पड़े और अन्दर से मकान का दरवाजा खोल दिया। सब लोगों को यथास्थान खड़ाकर स्वयं छत पर से आदेश देने लगे। डकैती समाप्त भी न हो पाई थी कि गांव में खबर हो गई और चारों ओर से ईंटें चलने लगी। यह देखकर लडके घबरा गए। आपने पुकार कर कहा—"तुम लोग अपना काम करते रहो, यदि कोई भी काम से हटा तो मेरी गोली का निशाना बनेगा।" एक ने नीचे से पुकारकर कहा—"कप्तान, ईंटों के कारण कुछ करते नही बनता।"

आपने, जिस ओर से ईंटें आ रही थी, उधर जाकर कहा—"ईंटें बद कर दो, अन्यथा गोली से मारे जाओगे।" इतने में एक ईंट आंख पर आकर लगी, देखते-देखते कपड़े खून से तर हो गए। उस समय उस साहसी वीर ने आंख की कुछ भी

परवाह न कर गोली चलाना शुरू कर दिया। दो ही फायरों के बाद ईंटें बन्द हो गईं। इधर डकैती भी समाप्त हो चुकी थी। अस्तु, सब लोग वापस चल दिए। पहले दिन के थके तो थे ही, आधी दूर चलकर ही प्रायः सब लोग बैठने लगे। बहुत कुछ साहस बंधाने पर उठकर चले ही थे कि एक विद्यार्थी बेहोश होकर गिर गया। कुछ देर बाद होश आने पर उसने कहा—"मुझमें अब चलने की शक्ति नहीं है। तुम लोग मेरे लिए अपने-आपको संकट में क्यों फंसाते हो ? मेरा सर काटकर लेते जाओ। अभी कुछ रात शेष है, तुम लोग आसानी से पहुंच सकते हो। सर काट लेनेपर मुझे कोई भी पहचान न सकेगा और इस प्रकार तुम सब लोग बच सकोगे।" साथी की इस बात से सबकी आंखों मे आसू आ गए। चोट लगने के कारण उस समय हमारे नायक की आंख से काफी खून निकल चुका था, किन्तु फिर भी और लोगों से आगे चलने को कहकर आपने उसे अपनी पीठ पर उठाया और ज्यों-त्यो कर चल दिए। जिस स्थान पर गाडी खड़ी थी, उसके थोड़ी दूर रह जाने पर आपने उस विद्यार्थी को एक वृक्ष के नीचे लिटा दिया और स्वयं गाड़ी के पास जाकर जो एक व्यक्ति उसकी निगरानी के लिए रह गया था उसे साथी को लेने के लिए भेजा। मकान में पिता के पूछने पर कह दिया—"बैल बिगड़ गए, गाड़ी उलट गई और मेरे चोट आ गई।"

जिस समय फरार होकर आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागते फिर रहे थे, उस समय की कथा भी बड़ी करुणाजनक है। उस बीच में कई बार आपको मौत का सामना करना पड़ा था। कुछ दिन तो पास में पैसा न रह जाने के कारण आपने घास तथा पत्तिया खाकर ही अपने जीवन का निर्वाह किया था। नेपाल, आगरा तथा राजपूताना आदि स्थानो में घूमते रहने के बाद एक दिन अखबार में देखा कि सरकारी एलान (रायल प्रोक्लेमेशन) में आप पर से वारंट हटा लिया गया है। बस, आप घर वापस आ गए और रेशम के सूत का एक कारखाना खोल कर कुछ दिन तक आप घर का काम-काज देखते रहे। किन्तु जिसहृदय मेएक बार आग लग चुकी उसे फिर चैन कहां ? अस्तु, फिर से दल का संगठन प्रारम्भ कर दिया।

एक बार किसी स्टेशन पर जा रहे थे। कुली बाक्स लेकर पीछे-पीछे चल रहा था कि ठोकर खाकर गिर पड़ा। बहुत-सी कारतूसों के साथ कई एक रिवाल्वर्स बाक्स मे से निकलकर प्लेटफार्म पर गिर पड़े। कुली पर एक सूट-बूटधारी साहब बहादुर द्वारा बुरी तौर से मार पडती देख पास खड़े हुए दरोगा साहब को दया आ गई। कुली को क्षमा करने की प्रार्थना कर, बेचारे स्वयं ही सारा सामान बाक्स के अन्दर भरने लगे। उसदिन यदि आप तनिक भी डर जाते और इस बुद्धिमानी से काम न लेते तो निश्चय ही गिरफ्तार हो गए थे।

माताओ के लिए भी उस भावुक हृदय मे कम श्रद्धा न थी। उनके तनिक

भी अपमान को देखकर वह पागल-सा हो उठता था। एक समय की बात है। पेशेवर डाकुओं के एक सरदार ने आपके पास आकर अपने-आपको क्रान्तिकारी दल का सदस्य बतलाया और उसके द्वारा की जाने वाली डकैतियों में सहयोग देने की प्रार्थना की। निश्चय हुआ कि पहली डकैती में हमारे नायक केवल दर्शक की भांति ही रहेंगे और उनके कार्य-संचालन का ढंग देखकर उसीके अनुसार अपना निश्चय करेंगे। स्थान और दिन नियत होने पर डकैती वाले गांव में पहुंचे। मकान देखकर आपने कहा—"इस झोपड़ी में क्या मिलेगा ? आप लोग व्यर्थ ही इन गरीबों को तंग करने आये हैं।" यह बात सुनकर सब लोग हंस पड़े। एक ने कहा—"आप शहर के रहने वाले हैं, गांव का हाल क्या जानें। यहां ऐसे ही मकानों में रुपया रहता है।" खैर, अन्दर घुसने पर सब लोग अपनी मनमानी करने लगे। मकान में उस समय पुरुष न थे। उन लोगों ने स्त्रियों को बुरी तरह तंग करना शुरू कर दिया। मना करने पर फिर वही जवाब मिला, "तुम क्या जानो !" अधिक अत्याचार होते देख, आपने एक से थोड़ी देर के लिए बन्दूक तथा कुछ कारतूस मांग लिए और कूदकर छत पर आ गए। वहां से पुकारकर कहा—"खबरदार, यदि किसीने भी स्त्रियों की ओर आंख उठाई तो गोली का निशाना बनेगा।" कुछ देर तो काम ठीक तौर पर होता रहा, किन्तु बाद में एक दुष्ट ने फिर किसी स्त्री का हाथ पकड़कर रुपया पूछने के बहाने कोठरी की ओर खींचा ! इस बार नायक ने जबान से कुछ भी न कहकर उसपर फायर कर दिया। छर्रों के पैर में लगते ही वह तो रोता-चिल्लाता अलग जा गिरा और बाकी लोगों के होश गुम हो गए। आपने ऊंची आवाज़ से कहा—"जो कुछ मिला हो उसे लेकर बाहर आओ।" कोई मिठाई की भेली सर पर लादकर और कोई घी का बर्तन हाथ में लटकाये बाहर निकला। जिसे कुछ भी न मिला उसने फटे-पुराने कपड़े ही बांध लिए, यह तमाशा देखकर उस सौम्य-सुन्दर मूर्ति ने उस समय जो उग्र रूप धारण किया था उसका वर्णन मेरी लेखनी की शक्ति के परे है। बन्दूक सीधी कर सब सामान वहीं पर रखवा दिया और सरदार की ओर देखकर कहा—"पामर, यदि भविष्य में तूने फिर कभी अपनी स्वार्थसिद्धि के नाम पर क्रान्तिकारियों को कलंकित करने का साहस किया तो अच्छा न होगा। जा, आज तुझे क्षमा करता हूं।" उस समय सरदार सहित दल के सभी लोग डर के मारे कांप रहे थे। इस डकैती में केवल साढ़े चौदह आने पैसे इन लोगों के हाथ लगे थे।

एक दिन 9 अगस्त, सन् 1925 ई० को सन्ध्या के आठ बजे 8 नम्बर की गाड़ी हरदोई से लखनऊ जा रही थी। एकाएक काकोरी तथा आलमनगर के बीच 52 नम्बर के खम्बे के पास गाड़ी खड़ी हो गयी। कुछ लोगों ने पुकारकर मुसाफिरों से कह दिया कि हम केवल सरकारी खजाना लूटने ही आए हैं। गार्ड से चाबी लेकर तिजोरी बाहर निकाली गई। इसी बीच में एक व्यक्ति नीचे उतरा और गोली से

घायल होकर गिर गया। लगभग पौन घण्टे के बाद लूटने वाले चले गए। इस बार करीब दस हजार रुपया इन लोगों के हाथ लगा।

25 सितम्बर से गिरफ्तारियां आरम्भ हो गईं और उसीमें हमारे नायक भी पकड़े गए। डेढ़ साल तक अभियोग चलने के बाद आपको फांसी की सजा हुई। बहुत कुछ प्रयत्न किया गया, किन्तु फांसी की सजा कम न हुई और 19 दिसम्बर, सन् 1927 ई० को गोरखपुर में आपको फांसी की रस्सी पर लटका दिया गया।

इन पंक्तियों के लेखक ने उन्हें प्रथम और अन्तिम बार मृत्यु के केवल एक दिन पहले फांसी की कोठरी मे देखा था और उनका यह सब हाल जाना था। उस सौम्य मूर्ति की वह मस्तानी अदा आज भी भूली नही है। जब कभी किसीको उनका नाम लेते सुनता हूं तो एकदम उस प्यारे का वही स्वरूप आंखों के सामने नाचने लगता है। लोगों को उन्हें गालियां देते देख, हृदय कह उठता है—क्या वह डाकू का स्वरूप था ? अन्तस्तल में छिपकर न जाने कौन बार-बार यही प्रश्न करने लगता है—"क्या वे हत्यारे की आंखें थीं ?" भाई, दुनिया के सभ्य लोग कुछ भी क्यों न कहें, किन्तु मैं तो उसी दिन से उनका पुजारी हूं।

उस दिन मां को देखकर उस भक्त पुजारी की आखों मे आसू आ गए। उस समय उस जननी ने हृदय को पत्थर से दबाकर जो उत्तर दिया था, वह भी भूला नही है। वह एक स्वर्गीय दृश्य था, और उसे देखकर जेल-कर्मचारी भी दंग रह गए थे। माता ने कहा—"मैं तो समझती थी तुमने अपने पर विजय पाई, किन्तु यहां तो तुम्हारी कुछ और ही दशा है ! जीवन-पर्यन्त देश के लिए आसू बहाकर अन्तिम समय तुम मेरे लिए रोने बैठे हो ! ऐसी कायरता से अब क्या होगा ? तुम्हें वीर की भांति हंसते हुए प्राण देते देखकर मैं अपने-आपको धन्य समझूंगी। मुझे गर्व है कि इस गए-बीते जमाने में मेरा पुत्र देश की वेदी पर प्राण दे रहा है। मेरा काम तुम्हें पालकर बड़ा करना था, इसके बाद तुम देश की चीज थे और उसीके काम आ गए। मुझे इसमें तनिक भी दुःख नही है।" उत्तर मे उसने कहा—"मां, तुम तो मेरे हृदय को भलीभांति जानती हो। क्या तुम समझती हो कि मैं तुम्हारे लिए रो रहा हूं ? अथवा इसलिए रो रहा हूं कि मुझे कल फांसी हो जाएगी ? यदि ऐसा है तो मैं कहूंगा कि तुम जननी होकर भी मुझे समझ नही पाईं, मुझे अपनी मृत्यु का तनिक भी दुःख नहीं है। हां, यदि घी को आग के पास लाया जाएगा तो उसका पिघलना स्वाभाविक है। बस, उसी प्राकृतिक सम्बन्ध से दो-चार आसू आ गए। आपको मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं अपनी मृत्यु से बहुत सन्तुष्ट हूं।"

मैं एक ओर बैठकर विमुग्ध नेत्रों से उस छवि का स्वाद ले रहा था कि किसी ने कहा—"समय हो गया।" बाहर आकर दूसरे दिन सुना कि उन्हें फांसी दे दी गई। उस समय यह भी सुना कि तख्ते पर खड़े होकर उस प्रेम-पुजारी ने अपने-

आपको गिरधारी के चरणों में समर्पित करते हुए कहा था—

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूं न मेरी आरजू रहे॥

और अन्त में यह कहते हुए—

अब न पिछले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़।
एक मिट जाने की हसरत, बस दिले-बिस्मिल मे है॥

वह वीर जहां से आया था वहीं को चला गया।

—प्रभात

श्री राजेन्द्र लहरी

इस गुलामी में तो हमको न खुशी आई नज़र,
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।

बनारस प्रारम्भ से ही संयुक्त प्रान्त में षड्यंत्रों का केन्द्र रहा है। हमारे नायक भी यहीं के रहने वाले थे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० एस-सी० क्लास में पढ़ते हुए आप विप्लव का कार्य करते थे। कालेज में केवल नाम मात्र के लिए ही पढ़ते थे। उनका अधिक समय दल के काम में इधर-उधर घूमने में ही व्यतीत होता था। उनका शरीर बहुत सुडौल था और दौड़ने का भी अच्छा अभ्यास था।

आप दल की ओर से बम बनाने की विद्या सीखने के लिए बंगाल भेजे गए थे और वहाँ दक्षिणेश्वर के एक मकान में गिरफ्तार किए गए। गिरफ्तारी के समय मकान से बम बनाने का कुछ सामान भी पुलिस के हाथ लगा। वहीं पर अभियोग चला और कुछ अन्य साथियों के साथ आपको सज़ा हो गई।

इधर काकोरी के मामले में सरकारी गवाह बनारसीदास ने आपको सूबे का संगठनकर्त्ता (प्रोविंशियल आर्गनाइज़र) बतलाया, अतः आपको बंगाल से लखनऊ लाया गया। साथ के आदमियों के दूसरी ओर मिल जाने से सारा भेद खुल गया और आपको अदालत से फांसी की सज़ा हुई।

अदालत से निकलने पर बाहर खड़ी हुई जनता को देखकर आपने अपने और साथियों के साथ मिलकर गाया—

दरो-दीवार पे हसरत से नज़र करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं॥

इसके बाद वही अखबारों वाली पुरानी कथा है। अपील हुई, डेपुटेशन गया, दौड़-धूप की गई, किन्तु केवल मन को सन्तोष देने के लिए। सरकार को वे मुट्ठी पर हड्डियां इतनी भयंकर जान पड़ीं कि उसने किसी भी बात पर ध्यान न देकर 17 दिसम्बर, 1927 को गोंडा जेल में उन्हे रस्सी से लटका ही तो दिया।

अपील अस्वीकार हो जाने पर आपने अपनी बड़ी बहन को जो पत्र लिखा था, उसका साराश यह था—"बहन, आपने बचपन से मुझे पुत्र की भांति पाला और बड़ा किया। आपकी गोद में खेलकर मुझे माता का अभाव तनिक भी व्याकुल न कर सका। यह आपकी ही बातों का प्रभाव था, जिसने आगे चलकर मुझे देश

के लिए पागल बना दिया। मुझे हर्ष है कि आपकी शिक्षा तथा प्यार व्यर्थ नहीं गया। मुझे यह भी आशा है कि आप मेरे मरने पर दुखित न होकर हर्ष प्रकट करेंगी।"

फांसी के दिन आपने प्रातःकाल उठकर स्नान किया और फिर गीता का पाठ करने लगे। निश्चित समय पर कोठरी खोली गई और आप प्रसन्नतापूर्वक स्वयं ही फांसी-घर की ओर चल दिए। रस्सी को चूमकर अपने हाथ से ही उसे गले में पहन लिया, 'वन्दे मातरम्' के उच्च निनाद के साथ ही तख्ता खिंचा और वह रत्न दस हाथ गहरे गढ़े में झूलने लगा।

—संतोष

श्री रोशनसिंह

जिन्दगी जिन्दादिली को जान ऐ रोशन,
यों तो कितने ही हुए और फना होते हैं।

असंख्य गोपियों के बीच विलासिता का जीवन व्यतीत करने पर भी आज संसार कृष्ण को योगिराज के नाम से सम्बोधित करता है। यह सब इसलिए न, कि उनकी उस विलासिता ने कभी भी उनके कर्तव्य-पालन में बाधा उपस्थित नहीं की और उन्होंने आवश्यकता के समय अपने को उन सब बातों से इस प्रकार अलग कर लिया, मानो सदा से उदासीन ही रहे हों। अथवा दूसरे शब्दों मे हम यह भी कह सकते हैं कि उन्होंने मन पर विजय प्राप्त कर अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया था।

पाठको, गुलामी के इस युग मे आज हम ऐसे ही एक कृष्ण को लेकर आपके सामने उपस्थित हो रहे हैं। पर्याप्त सम्पत्ति तथा जमींदारी के होते हुए भी वह वैरागी था। दो-दो स्त्रियों के रहते हुए भी वह निर्मम था और लाड़-प्यार से पाले जाकर विलासिता के आंगन में खेलकर भी वह लिप्साहीन था। अपने साथियों मे वह सबसे बलवान था और उत्साह का तो उसमें स्रोत ही बहा करता था। साधारण-सी शिक्षा पाकर भी उसके हृदय में जलन थी। 'टु डू एण्ड डाई' का तो वह मूर्तिमान अवतार था। उसके निकट 'ह्वाई' का सवाल ही कभी नहीं आया।

उस दिन 9 अगस्त, सन् 1925 को जब काकोरी तथा आलमनगर के बीच गाड़ी रोककर सरकारी खज़ाना लूट लिया गया था तो उसीके सम्बन्ध मे आप भी गिरफ्तार कर लखनऊ लाए गए। जेल में आकर आपने एकदम मौन धारण कर लिया। उस दिन से उन्होंने आवश्यकता से अधिक बोलने का प्रयत्न न किया। वे हिन्दी तथा मराठी भाषा अच्छी तरह जानते थे, अतः उसीके समाचार पत्र पढ़ना और अपने मे ही मस्त रहना उनका नित्य का प्रोग्राम हो गया। डेढ़ साल तक अभियोग चलने के बाद आपको फांसी की सज़ा हुई।

वकील ने कहा—"आपकी अपील कर दी गई।"

उत्तर मिला—"कोई बात नहीं।" इसी प्रकार एक दिन जेल सुपरिंटेंडेंट ने आकर कहा—"रोशनसिंह, तुम्हारी अपील खारिज हो गई!" उस समय भी वही पूर्वपरिचित उत्तर मिला—"कोई बात नहीं।" फांसी के एक दिन पहले परिवार वालों से मुलाकात की और उन्हें उत्साह देते हुए कहा—"तुम लोग मेरे लिए चिन्ता न करना। भगवान को अपने सभी पुत्रों का ध्यान है।"

19 दिसम्बर, 1927 का दिन था। प्रातःकाल उठकर स्नान किया, साफ कपड़े पहने और मूछों को ठीककर फांसी के तख्ते की ओर चल दिए। स्वागत के लिए कुछ लोग जेल के बाहर पहुंच गए थे। कुछ देर बाद जेल के अन्दर से गाने की आवाज़ सुनाई दी। सब लोग मन्त्र-विमुग्ध होकर सुनते रहे। गाना समाप्त होने पर 'वन्दे मातरम्' की आधी आवाज़ आकर रह गई। लोगों ने कहा—"फांसी हो गई।"

आपको इलाहाबाद में फांसी हुई थी। कुछ लोगों ने अन्तिम संस्कार किया और भस्म को माथे में लगाकर वापस चले आए। तब से आज तक उस वीर का नाम-मात्र शेष है।

—रूपचन्द्र

श्री अशफाकुल्ला खां

तंग आकर आदमियों के जुल्म और बेदाद से,
चल दिए सू-ए-अदम जिन्दाने फैजाबाद से॥

कट्टर मुसलमान के घर जन्म लेकर भी वह मुसलमान न था। उसके कल्पना राज्य में हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव न था। वह तो प्रेम का पुजारी था और अन्त तक प्रेम का ही गीत गाते हुए यहां से चला गया। दुनिया के सभ्य समाज ने उसे डाकू तथा हत्यारे के नाम से सम्बोधित किया। मुसलमानों के समझदार मुल्लाओं ने उसे काफिर कहकर पुकारा और कुछ सहानुभूति रखनेवालों ने कहा—वह एक जल्दबाज तथा अधीर आदर्शवादी युवक था।

शाहजहांपुर के एक धनी-मानी मुसलमान परिवार में अशफाक का जन्म हुआ था और वहीं के अंग्रेजी स्कूल में नवीं कक्षा तक आपने शिक्षा पाई थी।

सरकारी एलान (जनरल प्रोक्लेमेशन) के अनुसार जब श्री रामप्रसाद जी फिर वापस आ गए तो आपने उनके पास आना-जाना प्रारम्भ कर दिया। उस समय उन्होंने आप पर विश्वास न किया और दूर ही रहने का प्रयत्न करते रहे। किन्तु आप तो उनके साहस तथा वीरता के कार्यों को सुनकर पहले ही से उनपर जी-जान से मुग्ध हो चुके थे। अतः लाख अलग रहने पर भी अन्त में आपकी ही विजय हुई और कुछ ही दिनों में आप 'बिस्मिल' के दाहिने हाथ बन गए। रामप्रसाद जी कट्टर आर्यसमाजी होकर भी अशफाक को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। कभी-कभी इन दोनों का खाना-पीना भी एक साथ ही हो जाता था। वे एक-दूसरे को राम तथा कृष्ण के नाम से पुकारा करते थे। आपको हृदय की धड़कन की बीमारी थी, अतएव कभी-कभी उसका दौरा होने पर घण्टों बका करते थे।

एक समय की बात है। आपको बीमारी के कारण दौरा आ गया। उस समय आप राम का नाम लेकर चिल्लाने लगे। माता-पिता ने बहुतेरा समझाया कि खुदा को याद करो, यह राम-राम क्या बक रहे हो? किन्तु आप तो राम के दीवाने थे, अतः खुदा की दाल कैसे गल सकती थी! सबने कहा—यह तो काफिर हो गया। किन्तु इतने ही में एक पड़ोसी आ गया। वह इस राम के राज को जानता था, अतएव जाकर रामप्रसाद को बुला लाया। उनको देखकर आपने कहा, "राम, तुम आ गए!" और थोड़ी ही देर में दौरा समाप्त हो गया। उस समय घर वालों को अशफाक के राम का पता चला।

अशफाक के हृदय में धर्मान्धता लेशमात्र के लिए भी न थी। उनके निकट

मन्दिर तथा मस्जिद में कोई भेदभाव न था। उस दिन जब शाहजहांपुर में हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हो रहा था तो आप आर्यसमाज मन्दिर में 'बिस्मिल' जी के पास ही बैठे थे। मुसलमानों के एक दल को समाज-मंदिर पर हमला करने आते देख आप पिस्तौल लेकर बाहर आ गए और कहा—"मुसलमानो, मैं एक कट्टर मुसलमान हूं, किन्तु फिर भी मुझे इस मन्दिर की एक-एक ईंट प्राणों से अधिक प्यारी है। मेरे निकट इसमें तथा मस्जिद में भेद-भाव नहीं है। यदि तुम्हें मजहब के नाम पर झगड़ा करना है, तो बाजार में जाकर लड़ो। यदि किसी ने भी इस पवित्र स्थान की ओर आंख उठाई तो गोली का निशाना बनेगा।" यह देखकर किसी ने भी आगे बढ़ने का साहस न किया और वापस चले गए।

काकोरी की डकैती के बाद जब चारों ओर धर-पकड़ शुरू हो गई तो आप फरार हो गए। इस समय कुछ लोगों ने कहा था कि अशफाक का छिपकर रहना बिल्कुल ही असम्भव है। उनका राजकुमारों जैसा ठाठ कहीं भी न छिप सकेगा। और जो कोई भी उन्हें देखेगा, उसीकी निगाह उनपर अटक जाएगी। हुआ भी ऐसा ही। आप दिल्ली के एक होटल में ठहरे थे। वहीं से गिरफ्तार कर लखनऊ लाए गए और काकोरी के दूसरे मुकदमे में आपको फांसी की सजा हुई।

माफी मांगने को कहे जाने पर आपने कहा—"खुदावन्द-करीम के सिवा और किसीसे माफी की प्रार्थना करना मैं हराम समझता हूं।" किन्तु बाद में रामप्रसाद जी के अधिक बाध्य करने पर आपने माफी की अपील की थी, जो बाद में मन्जूर न हो सकी।

17 दिसम्बर 1927 को फांसी के पास जाकर तख्ते का बोसा लिया और फिर कुरान की आयतें पढ़ते हुए रस्सी से झूल गए।

जिस समय आपका शव फैजाबाद से शाहजहांपुर ले जाया जा रहा था तो लखनऊ स्टेशन पर सैंकड़ों मनुष्यों की भीड़ जमा थी। एक अंग्रेजी अखबार के संवाददाता ने लिखा था—

"लखनऊ की जनता अपने प्यारे अशफाक के अन्तिम पुण्य दर्शनों के लिए बेचैन होकर उमड़ आई थी और वृद्ध लोग इस प्रकार रो रहे थे जैसे उनका अपना ही पुत्र खो गया हो।"

—श्रीकृष्ण

मुद्रक : शुक्ला आर्ट प्रिंटर्स, मौजपुर, दिल्ली

1117

वीरेन्द्र सिन्धु

☐ वह समाज में उथल-पुथल चाहती है, पर वह विनाश की नहीं, विकास की कलाकार है। वह क्रान्ति के गमले में लगी शान्ति की लता है।

☐ मोरचे पर टैंक-तोप भी होते है और रणभेरी भी। वह राष्ट्रीय सेना की रणभेरी है, जो मोरचे के लिए सैनिको में जोश भरती है, उनकी थकान हरती है, उन्हें लक्ष्य की चेतना देती है। वह धनुष नहीं, धनुष की टंकार है, वह विजय नहीं, विजय की हुंकार है।

☐ वह क्रान्ति नहीं है, शान्ति है, पर मरघट की शान्ति नहीं, आंगन की शान्ति, जहां क्रान्ति अपने विध्वंस की सर्जनात्मक कृतार्थता प्राप्त करती है।

☐ वह तलवार नहीं है, सैनिक के गठावेश पर तलवार बांधने वाली कलाई है। वह आक्रोश से उभरी सैनिक की पेशानी नहीं है, उसपर उल्लास का मांगलिक तिलक लगाने वाली उंगली है।

☐ वह सिमटती भृकुटि नही, बिखरती मुसकान है, भूनने वाली बन्दूक नही, झूमने वाली कलम है।

☐ संक्षेप में, वह सौम्य विद्रोहिणी है। उसकी कर्मठता साधनाओं और सम्भावनाओं से भरपूर है।